[बी० ए०, एम० ए०, समकक्ष संस्कृत परीक्षाऐं एवं प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए]

श्री वरदराजकृत

लघुसिद्धान्तकौमुदी

(कृदन्त प्रकरणम्)

(सूत्रार्थ, व्याख्या, रूपसिद्धि एवं परिशिष्ट सहित)

सम्पादक

डॉ० रामप्रकाश गुप्त

एसो० प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग

पं० जे० एन० (पी० जी०) कॉलेज, बाँदा (उत्तर प्रदेश)

युवराज पब्लिकेशन्स, आगरा—2

दो शब्द

इस पुस्तक के विषय प्रवेश में व्याकरण से सम्बन्धित आवश्यक जानकारी, व्याकरणाचार्यों का जीवन परिचय वैयाकरणिक तकनीकी शब्दों का विश्लेषण आदि प्रारम्भ में दिया गया है। पुस्तक के अन्त में परीक्षोपयोगी बहुविकल्पीय (वस्तुनिष्ठ), लघु उत्तरीय एवं दीर्घ उत्तरीय भी दिए गए हैं जो विद्यार्थियों के मार्गदर्शन का काम करेंगें।

पुस्तक की खास बात यह है कि इसमें सूत्र, सूत्रों के अर्थ, उनकी व्याख्या, शब्दों की रूप सिद्धि को वैज्ञानिक ढ़ंग से प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है ताकि विद्यार्थियों को सरलता से बोध गम्य हो सके।

इस पुस्तक को पूर्णता प्रदान करने में श्रद्धेय पं० श्री धरानन्द शास्त्री, श्री धर्मेन्द्र नाथ शास्त्री एवं पद्मश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी द्वारा सम्पादित लघुसिद्धान्तकौमुदी अति सहयोगी सिद्ध हुई है। मैं उन सभी विद्वानों के प्रति हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि इससे प्राध्यापक एवं विद्यार्थीगण अवश्य लाभान्वित होंगे। यदि इस पुस्तक के सम्पादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विद्वज्जन उसे अवश्य बताने का कष्ट करेंगे। सम्पादक उनका अत्यधिक आभारी रहेगा।

—रामप्रकाश गुप्त

विषयानुक्रमणिका

संकेत
प्र० वि० = प्रथमा विभक्ति
ए० व० = एक वचन
ब० व० = बहुवचन

श्री सद्गुरु परमात्मने नमः

संस्कृत-व्याकरण

विषय-प्रवेश

संस्कृत साहित्य एवं संस्कृत भाषा के सम्यक् अध्ययन हेतु संस्कृत व्याकरण का पूर्ण ज्ञान आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। वेदों को अच्छी प्रकार से समझने के लिए वेदाङ्गों में व्याकरण शास्त्र एक महत्वपूर्ण अङ्ग है।

शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरुक्तं ज्योतिषं तथा।
कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः।।

व्याकरण शास्त्र की सहायता से हम शब्द के वास्तविक रूप एवं अर्थ का भली भाँति बोध करते हैं अतः व्याकरण शास्त्र का सम्यक् अध्ययन आवश्यक है। बिना व्याकरण के व्यक्ति अन्धे के समान है। दूसरे शास्त्रों के अध्ययन के लिए भी व्याकरण रूपी ज्ञान चक्षु का होना आवश्यक है।

विना व्याकरणेनान्धः, वधिरः कोष विवर्जितः।
छन्दः शास्त्रं विना पंङ्गुः मूकस्तर्कविवर्जितः।।

इस शास्त्र के अध्ययन से शुद्ध रूप से लिखना, पढ़ना एवं बोलना बालक सीखता है। प्राचीन समय का एक श्लोक बहुत ही प्रसिद्ध है जिसमें एक पिता अपने पुत्र से कहता है—

यद्यपि बहुनाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो मा भूत सकलः शकलः सकृच्छकृत्।

इससे स्पष्ट है कि जिस शास्त्र से शब्दों की शुद्धता का ज्ञान हो उसे व्याकरण कहते हैं।

'व्याक्रियन्ते—व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति शब्द ज्ञान जनकं शास्त्रं व्याकरणम्।'

व्याकरण के प्रमुख आचार्य

प्राचीन ग्रन्थों का अवलोकन करने पर यह तथ्य प्रकाशित होता है कि व्याकरण शास्त्र का अध्ययन, मनन एवं चिन्तन वैदिक काल से होता रहा है। इसीलिए वेदाङ्गों में व्याकरण को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। व्याकरण का प्रारम्भिक रूप हमें 'प्रातिशाख्यों' में देखने को मिलता है। इसके पश्चात् महर्षि यास्क का महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'निरुक्त' आता है, इसमें शब्द निरुक्ति पर विचार किया गया है। यास्क ने शब्दों को चार भागों में विभाजित करके विवेचन किया है—(१) नाम, (२) आख्यात, (३) उपसर्ग, (४) निपात।

इसके साथ ही उन्होंने यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया कि धातुओं से ही शब्दों की उत्पति हुई। विद्वानों ने यास्क का समय ८०० वर्ष ई० पूर्व माना है।

यास्क के पश्चात् आपिशलि, काशकृत्सन, शाकल्य, शाकटायन, इन्द्र आदि वैयाकरणों के नाम आते हैं। इनका उल्लेख पाणिनि ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' में किया है, किन्तु पूर्ववर्ती ग्रन्थों में विवेचनाओं का तार्किक एवं व्यवस्थित रूप नहीं था। इस कार्य को पाणिनि ने व्याकरण को एक व्यवस्थित, तर्क संगत एवं सूत्रात्मक स्वरूप देने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की।

महर्षि पाणिनि

जीवन वृत्त—पाणिनि व्याकरण शास्त्र के सुप्रसिद्ध आचार्य हैं। अनेकों ग्रन्थों में उनके व्यक्तित्व की चर्चाएँ प्राप्त हैं। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने अनेकों स्थानों में उनका आदर पूर्वक स्मरण किया है। महर्षि पाणिनि का एक नाम आहिक भी था। माता का नाम दाक्षी होने से उन्हें दाक्षी पुत्र कहा जाता था। उनके पिता का नाम शलंकु या शलंक था। 'गणरत्नमहोपधि' ग्रन्थ में कहा गया है—

'शलातुरो नाम ग्रामः सोऽभिजनो स्यास्तीति शालातुरीयस्तत् भगवान पाणिनिः।'

इससे स्पष्ट है कि शलातुर ग्राम पाणिनि के पूर्वजों का निवास स्थान था। यह शलातुर ग्राम रावलपिण्डी से आगे 'अटक' स्टेशन से १५ कि०मी० दूर स्थित था। सम्भवतः जो लाहुर नाम से जाना जाता है।

समय—कुछ पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वान् पाणिनि का समय गौतम बुद्ध के बाद मानते हैं। वाचस्पति गैरोला ने अनेक विद्वानों के मतों का उल्लेख करते हुए इनके जन्म का समय ५०० ई० पूर्व ही माना है।

कृतित्त्व—महर्षि पाणिनि की सुविख्यात रचना अष्टाध्यायी है। यह आठ अध्यायों में विभाजित है। प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। प्रत्येक पाद में ३८ से २२० तक सूत्र हैं। कुल पादों की संख्या बत्तिस एवं सूत्रों की संख्या ३९९५ है। महर्षि पाणिनि ने धातु पाठ, गण पाठ, उणादिसूत्र 'लिङ्गानुशासन' की रचना कर व्याकरण शास्त्र को पूर्णता प्रदान की है।

महत्त्व—व्याकरण शास्त्र को पूर्ण विकसित करने में महर्षि पाणिनि का स्थान महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत का यह महत्त्वपूर्ण व्याकरण संसार की अन्य भाषाओं के व्याकरण वेत्ताओं में शीर्षस्थ स्थान प्रदान करती है। **प्रो० मोनियर विलियम्स** के अनुसार 'पाणिनीय व्याकरण उस मानव मस्तिष्क की प्रतिभा का आश्चर्यतम नमूना है जिसे किसी दूसरे देश ने आज तक सामने नहीं रखा'।

कात्यायन

कात्यायन और पाणिनि दोनों समकालीन हैं। कात्यायन मुनि व्याकरण शास्त्र के वार्तिककार के रूप में प्रसिद्ध हैं। आपने पाणिनि के सूत्रों की कमियों को दूर करने का प्रयास किया है। आपने अष्टाध्यायी के १५०० सूत्रों पर ४००० वार्तिकों की रचना की है। विद्वानों के मतानुसार कात्यायन का समय ३५० ई० पूर्व माना गया है। इनका वास्तविक नाम 'वररुचि' है। इनका एक काव्य ग्रन्थ 'स्वर्गारोहण' भी है।

महर्षि पतञ्जलि

महर्षि पतञ्जलि एक महान विचारक, उद्‌भट् विद्वान्, शास्त्रज्ञ एवं धर्मज्ञ थे। उन्होंने पाणिनि कृत अष्टाध्यायी पर एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की जिसे 'पातञ्जलि महाभाष्य' के नाम से जाना जाता है। इनका समय २०० ई० पूर्व तथा पहली ई० शती के मध्य का है। पतञ्जलि के अनुसार महर्षि पाणिनि का एक वर्ण भी निरर्थक नहीं है। उनकी अगाध श्रद्धा महर्षि पाणिनि पर थी। उन्होंने अष्टाध्यायी के सूत्रों की और इस पर लिखी वैयाकरणों के वार्तिकों की विवेचना सोदाहरण प्रस्तुत की। पाणिनीय व्याकरण में महाभाष्य के मन्तव्य सबसे अधिक प्रामाणिक माने जाते हैं। पातञ्जलि महाभाष्य पर अनेकों टीकाएँ लिखी गईं। इनमें से भतृहरि कृत 'महाभाष्य दीपिका', कैयट कृत 'महाभाष्य प्रदीप' अधिक प्रसिद्ध रहीं।

जयादित्य, वामन

महर्षि पतञ्जलि के बाद जयादित्य एवं वामन का नाम आता है। जयादित्य का समय ६६१ ई० तथा वामन का समय ६७० ई० माना गया है। जयादित्य द्वारा पाणिनि सूत्रों पर लिखित टीका 'काशिका' सर्वाधिक मान्य रही। 'काशिका' के प्रथम पाँच अध्याय जयादित्य द्वारा और बाद के तीन अध्यायों की रचना वामन द्वारा की गई।

भर्तृहरि

'वाक्यपदीय' के रचयिता भर्तृहरि का नाम वैयाकरणों में उल्लेखनीय है। उन्होंने शृंगारशतक, वैराग्यशतक एवं नीतिशतक का प्रणयन किया है। भर्तृहरि का समय युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार ४५० ई० पूर्व का है।

भट्टोजि दीक्षित

भट्टोजि दीक्षित महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर भट्ट तथा गुरु पं० शेषकृष्ण थे। **डॉ० वेलवेलकर** ने भट्टोजि दीक्षित का समय ई० सन् १६०० से १६५० के मध्य स्वीकार किया है। कुछ विद्वान् सोलहवीं शताब्दी का प्रारम्भ मानते हैं। इनकी प्रसिद्ध रचना 'सिद्धान्त कौमुदी' है। भट्टोजि दीक्षित ने 'सिद्धान्त कौमुदी' में 'अष्टाध्यायी' के सभी सूत्रों को विविध प्रकरणों में व्यवस्थित किया है। वस्तुतः सिद्धान्त कौमुदी 'महाभाष्य' का सारतत्व है।'

कौमुदी यदि कण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रमः।
कौमुदी यद्यकण्ठस्था वृथा भाष्ये परिश्रमः।।

वरदराज

भट्टोजि दीक्षित के पश्चात् व्याकरण शास्त्र में महत्त्वपूर्ण नाम आचार्य वरदराज का है। ये दक्षिणात्य ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम दुर्गातनय था। वरदराज भट्टोजि दीक्षित के शिष्य थे। आपकी चार रचनाएँ हैं—लघुसिद्धान्तकौमुदी, मध्यसिद्धान्तकौमुदी, सार-सिद्धान्तकौमुदी और गीर्वाण पद मंजरी। इनका समय १७वीं शताब्दी माना जा सकता है।

लघुसिद्धान्तकौमुदी के अध्ययनार्थ
कुछ आवश्यक जानकारी

१. प्रत्याहार—पाणिनि ने संक्षेप करने के लिए प्रत्याहार विधि को अपनाया है। इन प्रत्याहारों का निर्माण १४ माहेश्वर सूत्रों के आधार पर होता है। **उदाहरणार्थ** 'अक्' प्रत्याहार के अन्तर्गत अ, इ, उ, ऋ और लृ वर्णों की गणना होती है। ये समस्त वर्ण अक् प्रत्याहार में अन्तर्भूत हैं। इसके अन्तिम वर्ण की इति संज्ञा मानी जाती है।

१४ माहेश्वर सूत्र निम्नाङ्कित हैं। ये सूत्र भगवान शंकर से पाणिनि को प्राप्त हुए थे—

१. अ इ उ ण्, २. ऋ लृ क्, ३. ए ओ ङ्, ४. ऐ औ च्, ५. ह य व र ट्, ६. ल ण्, ७. ञ म ङ ण न म्, ८. झ भ ञ्, ९ घ ढ ध ष्, १० ज ब ग ड द श्, ११. ख फ छ ठ थ च ट त व्, १२. क प य्, १३. श ष स र्, १४. ह ल्।

इन्हीं माहेश्वर सूत्रों से प्रत्याहार बनते हैं। इनकी संख्या कुल ४२ है। ये प्रत्याहार अकारादिक्रम से निम्नलिखित हैं—

१.	अक्	८.	अश्	१५.	ऐच	२२.	जश्	२९.	भष्	३६.	रल्
२.	अच्	९.	इक्	१६.	खय्	२३.	झय्	३०.	मय्	३७.	वल्
३.	अट्	१०.	इच्	१७.	खर्	२४.	झर्	३१.	यञ्	३८.	वश्
४.	अण्	११.	इण्	१८.	ङम्	२५.	झल्	३२.	यण्	३९.	शर्
५.	अण्	१२.	उक्	१९.	चय्	२६.	झश्	३३.	यम्	१०.	शल्
६.	अम्	१३.	एङ्	२०.	चर्	२७.	झष्	३४.	यय्	४१.	हल्
७.	अल्	१४.	एच्	११.	छ्व्	२८.	बश्	३५.	यर्	४२.	हश्

२. गण—किसी एक नियम के अन्तर्गत अनेकों शब्दों का उल्लेख करना होता है। उन शब्दों में प्रथम शब्द को लेकर उसी नाम से गण का नामकरण कर देते हैं जो समस्त शब्दों का बोधक होता है।

३. अनुबन्ध या इत्संज्ञा—इत्संज्ञा हो जाने से इत्संज्ञक वर्ण का लोप हो जाता है। जैसे—जस् में ज् की इत्संज्ञा हो गई तो ज् का लोप हो जाएगा और जस् में 'अस्' ही शेष रह जाएगा। निम्नांकित वर्णों की इत्संज्ञा होती है—

१. अन्त का हल्, २. उपदेश को अनुनासिक अच्, ३. प्रत्यय के आदि में आने वाले चवर्ग और षकार, ४. तद्धित भिन्न प्रत्ययों के आदि में आने वाला लकार शकार और कवर्ग।

४. अधिकार—अमुक स्थान से अमुक सूत्र तक यह कार्य होगा। यह बतलाने वाले अधिकार सूत्र कहलाते हैं।

५. एकादेश—जहाँ दो वर्णों का मिलकर एक रूप हो जाता है, वह एकादेश कहलाता है; जैसे—अ + इ = ए।

६. पर रूप—जहाँ पूर्व एवं पर अक्षर मिलकर पर अर्थात् बाद का अक्षर ही रह जाए वहाँ पर रूप कहलाता है। जैसे—अ + ए = ए।

७. पूर्व रूप—जहाँ पूर्व वर्ण एवं पर वर्ण के मिलने पर पूर्व वर्ण हो जाय वह पूर्व वर्ण कहलाता है। जैसे—ए + अ = ए।

८. प्रकृति भाव—जहाँ वर्ण वैसा का वैसा ही बना रहता है, वह प्रकृति भाव होता है। जैसे—ओ + अ = ओ अ।

९. पद—सुबन्त एवं तिङन्त को पद कहते हैं। जैसे—राम + सु = रामः। यहाँ सु प्रत्यायन्त राम शब्द सुबन्त है; अतः रामः पद है।

१०. उपधा—अन्तिम वर्ण से पहले वर्ण को उपधा कहते हैं।

११. टि—किसी शब्द का अन्तिम स्वर सहित आगे वाला भाग टि कहलाता है। जैसे—पठ् में अठ् टि संज्ञक है।

१२. अङ्ग—जिस शब्द से प्रत्यय किया जाता है वह अङ्ग कहलाता है।

१३. विभाषा—प्रतिषेध तथा विकल्प की विभाषा संज्ञा होती है। अर्थात् किसी कार्य का विकल्प से होना।

१४. गुण—अ, ए और ओ की गुण संज्ञा होती है।

१५. वृद्धि—आ, ऐ और औ की वृद्धि संज्ञा होती है।

१६. सम्प्रसारण—य, व, र, ल के स्थान पर इ, उ, ऋ, लृ वर्णों की सम्प्रसारण संज्ञा होती है।

१७. संयोग—जब व्यञ्जनों के मध्य स्वर नहीं होते ऐसे व्यञ्जनों के मेल को संयोग कहते हैं।

१८. आदेश—किसी वर्ण के स्थान पर उसकी सत्ता मिटा कर दूसरे वर्ण का आगमन आदेश है। जैसे— क्त्वा के स्थान पर ल्यप् का आदेश। (शत्रुवदादेशः)।

१९. आगम—इसमें पूर्व वर्तमान वर्ण बना ही रहता है और अन्य वर्ण का भी आगमन हो जाये (मित्रवदागमः)।

२०. प्रगृह्य—ईकारान्त, ऊकारान्त तथा एकारान्त द्विवचनान्त पद प्रगृह्य संज्ञक होते हैं।

२१. प्रातिपदिक—(१)—धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त को छोड़ कर सार्थक शब्दों की प्रातिपदिक संज्ञा होती है। (२) कृदन्त, तद्धित और समस्त (समास वाले) पदों की प्रातिपदिक संज्ञा होती है। प्रातिपदिक संज्ञक शब्दों से विभक्ति एवं वचन के अनुसार 'सु' आदि प्रत्यय होते हैं।

२२. स्वादि कार्य—

कारक	विभक्ति	एक वचन	द्विवचन	बहुवचन
कर्ता	प्रथमा	सु	औ	जस्
कर्म	द्वितीया	अम्	औट्	शस्
करण	तृतीया	टा	भ्याम्	भिस्
सम्प्रदान	चतुर्थ	ङे	भ्याम्	भ्यस्
अपादान	पञ्चमी	ङसि	भ्याम्	भ्यस्
सम्बन्ध	षष्ठी	ङस्	ओस्	आम्
अधिकरण	सप्तमी	ङि	ओस्	सुप्
सम्बोधन	प्रथमा	सु	औ	जस्

२३. धातु—धातुओं से क्रियाओं का निर्माण होता है। जैसे—भू, पठ् आदि धातुएँ।

२४. लकार—लकार विभिन्न कालों के बोधक होते हैं। लकारों की संख्या १० है। ये निम्नवत् हैं—

(अ) लट् लकार—वर्तमान काल का बोध कराने के लिए लट् लकार का प्रयोग होता है। जैसे—रमेशः पठति।

(ब) लङ् लकार—ऐसे वाक्य जिनमें काम पूरा हो चुका होता है, भूत काल में होते हैं। जैसे—सुरेशः पुस्तकं अपठत्।

(स) लिट् लकार—परोक्ष भूतकाल के लिए लिट् का प्रयोग होता है। जैसे—रामः वनं जगाम।

(द) लुट् लकार—इस लकार का प्रयोग ऐसी भविष्यकालीन क्रियाओं का बोध कराने के लिए होता है जो आज नहीं होंगी। जैसे—अहं श्वः गन्तास्मि।

(य) लृट् लकार—भविष्यत् काल की समस्त क्रियाओं का ज्ञान कराने के लिए इस लकार का प्रयोग होता है। जैसे—अहं विद्यालयं गमिष्यामि।

(र) लोट् लकार—आज्ञा, निमन्त्रण एवं आमन्त्रण आदि को प्रकट करने के लिए इसका प्रयोग होता है। जैसे—सत्यं वद।

(ल) लिङ् लकार—इस लकार को दो भागों में बाँट सकते हैं—

(१) विधिलिङ्—विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण आदि चाहिए अर्थ में इसका प्रयोग होता है। जैसे—सत्यं ब्रूयात्।

(२) आर्शीलिङ्—आशीर्वाद को व्यक्त करने के लिए इसका प्रयोग होता है। जैसे—शुभं ते भूयात्।

(व) लुङ् लकार—यह भूतकाल में होने वाली समस्त क्रियाओं में प्रयुक्त होती है, किन्तु आसन्न भूत कालिक कार्यों के लिए इसका प्रयोग अधिक होता है। जैसे—वह आज गया—(सः अद्य अगमत्)।

(श) लृङ् लकार—यदि एक क्रिया का होना दूसरी क्रिया के होने पर निर्भर हो तो क्रिया की असिद्धि प्रतीत होने पर भविष्यत् अर्थ में लृङ् लकार का प्रयोग होता है। जैसे—यदि भवन्तः अपठिष्यन् तर्हि उत्तीर्णाः अभविष्यन्।

२५. सार्वधातुक, आर्धधातुक—धातु से जुड़े तिङ् और शित् प्रत्यय सार्वधातुक कहलाती हैं तथा धातु से जुड़े अन्य शेष प्रत्यय आर्धधातुक होती हैं। जैसे—'भू' धातु से होने वाले तिप् एवं शप् सार्वधातुक हैं और भू धातु से होने वाले तव्य आदि प्रत्यय आर्धधातुक हैं। लट्, लोट्, लङ् और विधि लिङ्ग शुद्ध सार्वधातुक हैं। लिट् तथा आशीर्लिंग शुद्ध आर्धधातुक लकारें हैं।

२६. कित् और ङित्—जिन प्रत्ययों में ककार एवं ङकार की इत्सज्ञा होती है, उन्हें कित् एवं ङित् कहते हैं। कित् एवं ङित् परे होने पर गुण एवं वृद्धि कार्य नहीं होते हैं।

✤

कृदन्त प्रकरणम्

अथ कृत्य प्रक्रिया

२०८. धातोः ३।१।९१।।

आ तृतीयाध्याय समाप्ते ये प्रत्ययास्ते धातोः परे स्युः।

कृदतिङिति कृत्संज्ञा।।

अर्थ—धातोः इस सूत्र से लेकर अष्टाध्यायी के तृतीय अध्याय की समाप्ति पर्यन्त जो प्रत्यय कहे गए हैं वे धातु से परे (आगे) होते हैं।

कृदति.................

व्याख्या—धातोः इस सूत्र के अधिकार में होने वाले तिङ् (तिप्, तस, झि,.....९ परस्मैपदी एवं त, आतम्, झ......९ आत्मनेपदी इस प्रकार कुल १८ प्रत्यय तिङ् कहलाते हैं।) प्रत्ययों को छोड़कर शेष प्रत्ययों की कृत संज्ञा होती है। अर्थात् धातु में जिस प्रत्यय को जोड़कर संज्ञा, विशेषण या अव्यय बनाते हैं उसको कृत् कहते हैं। जिन पदों के अन्त में कृत् प्रत्यय होते हैं, उन्हें कृदन्त कहते हैं। कृत् और तिङ् प्रत्ययों में अन्तर यह है कि कृदन्त संज्ञा, विशेषण या अव्यय होते हैं, क्रिया नहीं; किन्तु तिङन्त सदा क्रिया होते हैं।

जैसे—कृ + तव्यम् = कर्तव्यम्। यहाँ कृ धातु से होने वाला तव्यत् प्रत्यय कृत संज्ञक है।

२०९. वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ३।१।९४।।

अस्मिन् धात्वाधिकारेऽसरूपोऽपवाद प्रत्यय उत्सर्गस्य

वाधको वा स्यात्, स्त्र्यधिकारोक्त विना।

अर्थ—इस धातु के अधिकार में असरूप (जिसका समान रूप नहीं है) अपवाद प्रत्यय उत्सर्ग अर्थात् सामान्य प्रत्यय का विकल्प से बाधक होता है। 'स्त्रियाँ क्तिन्' इस सूत्र के अधिकार में कहे गए प्रत्ययों को छोड़कर।

व्याख्या—उत्सर्ग का अर्थ सामान्य है। सामान्य प्रत्यय सभी धातुओं से विहित होते हैं। उन्हें विशेष धातुओं की अपेक्षा नहीं रहती; जैसे—तव्यत्, अनीयर् आदि धातु मात्र से प्रयुक्त होने वाले सामान्य प्रत्यय हैं। अपवाद प्रत्यय वे प्रत्यय हैं जिनका विधान किन्हीं विशेष प्रकार की धातुओं के साथ होता है इसलिए इन्हें विशेष या बाधक कहते हैं। 'असरूप' का अर्थ है जो दूसरे से भिन्न है; जैसे—तव्यत् का यत् प्रत्यय असरूप है। सरूप का अर्थ है समान रूप वाला। जैसे—'अण्' तथा 'क' दोनों सरूप प्रत्यय हैं क्योंकि 'अण्' तथा 'क' दोनों में ही 'अ' शेष रहता है।

इसलिए 'यत्', ण्यत् आदि अपवाद या विशेष प्रत्ययों के विषय में सामान्य तव्यत् आदि प्रत्यय भी होते हैं; जैसे—कार्यम्, कर्तव्यम् इत्यादि। यह 'तव्यत्' आदि सामान्य प्रत्ययों का 'ण्यत्' आदि अपवाद 'असरूप' है अर्थात् भिन्न रूप है, इसलिए यह सूत्र प्रवृत्त होता हैं। जहाँ अपवाद (विशेष) प्रत्यय सामान्य प्रत्यय के समान रूप वाला हो वहाँ यह सूत्र नहीं लगेगा अर्थात् यह नित्य बाध होगा। जैसे—'अण्' और 'क' दोनों का अ शेष रहने से अपवाद (विशेष) क से सामान्य अण् का नित्य बाध हो गया। जैसे—'आतोऽनुपसर्गे' से 'क' प्रत्यय होकर 'गोदः' बनता है यहाँ फिर 'कर्मण्यण्' से अण् का विधान नहीं होगा।

'स्त्रियाम्' अधिकार में यह परिभाषा नहीं लगती। अतः यहाँ सभी प्रकार के प्रत्यय (अपवाद एवं सामान्य) नित्य बाधक होंगे।

कृत्याः ७।१।९५।।

ण्वुलतृचौ ३।१।१३३।। इत्यतः प्राक् कृत्यसंज्ञा स्युः।

अर्थ—'ण्वुल्तृचौ' इससे पहले के प्रत्ययों की कृत् संज्ञा होती है।

व्याख्या—'ण्वुलतृचौ' इस सूत्र से पूर्व तक धात्वधिकार में होने वाले प्रत्यय कृत्य प्रत्यय कहलायेंगे।
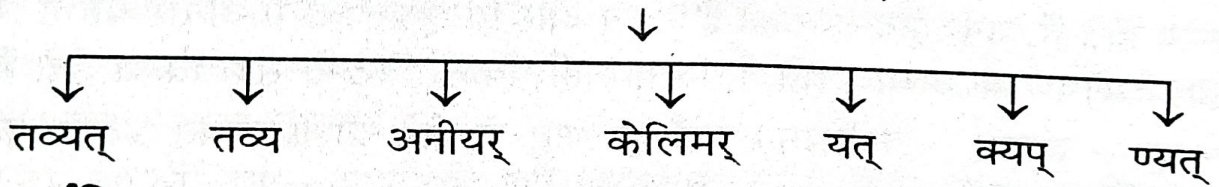
कर्तरि कृत् ३।४।६७।।

'कृत्' प्रत्ययः कर्तरिस्यात्। इति प्राप्ते।

अर्थ—कृत् प्रत्यय कर्ता में हों। इससे सभी प्रत्यय कर्ता के अर्थ में प्राप्त हुए।

व्याख्या—जैसा कि पूर्व में बतलाया जा चुका है कि तिङ्-भिन्न प्रत्यय कृत् कहलाते हैं। यहाँ उन कृत् प्रत्ययों को कृत्य एवं कृत् में विभक्त किया गया है। 'ण्वुल तृचौ' से पूर्व के प्रत्यय कृत्य है, यथा:—तव्यत्, तव्य, अनीयर्, यत्, ण्यत् आदि। कृत् प्रत्यय कर्ता के अर्थ में होते हैं।

तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ३।४।७०।।

एते भावकर्मणोरेव स्युः।

अर्थ—कृत्य, क्त और खलर्थ प्रत्यय भाव और कर्म में ही हों अर्थात् कर्ता में नहीं हों।

व्याख्या—यह सूत्र कृत्य, क्त, और खल् अर्थ वाले प्रत्ययों का विधान करता है। इस अर्थ वाले प्रत्यय भाव वाच्य एवं कर्म वाच्य में ही होते हैं, कर्तृवाच्य में नहीं। उपर्युक्त प्रत्ययों के योग में भाव वाच्य एवं कर्म वाच्य के समान अनुक्त होने से कर्ता में तृतीय विभक्ति होती है।

१. कृत्य प्रत्यय का उदाहरण—कर्मवाच्य में—भोक्तव्यं ओदनो भवता।
भाव वाच्य में—शयितव्यं भवता।

२. क्त प्रत्यय का उदाहरण—कर्म वाच्य में—भुक्त ओदनो भवता।

भाव वाच्य में—शयितं भवता।

३. ख लर्थ प्रत्यय का उदाहरण—

कर्मवाच्य में—ईषत्कर: कटो भवता।

भाव वाच्य में—ईषदाढ्यं भवं भवता।

तव्यत्तव्यानीयर: ३।१।९६।।

धातोरेते प्रत्यया: स्यु:। एधितव्यम् एधनीयं त्वया। भावे—औत्सर्गिकम् एक वचनं क्लीबत्वं। चेतव्य: चयनीयो वा धर्मस्त्वया।

अर्थ—तत्वत्, तव्य और अनीयर् प्रत्यय धातु से हों।

व्याख्या—तव्यत् का तकार इत्संज्ञक है। तित् होने से यह तित्स्वरितम् सूत्र से स्वरित होता है। यही तव्य से इसका भेद है। अनीयर् का रेफ् इत्संज्ञक है।

एधितव्यम् एधनीयं त्वया (तुम्हें बढ़ना चाहिए।)

रूपसिद्धि—

एधितव्यम्—एध् धातु से भाव में

'तव्यत्तव्यानीयर:' से तव्य प्रत्यय प्राप्त होने पर = एध् + तव्य।

'आर्ध धातु कस्येड्वलादे:' सूत्र से

इट् (इ) का आगम = एध् + इ + तव्य

'कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक सं एवं विभक्ति कार्य होकर = एधितव्यम् रूप सिद्ध हुआ।

एधिनीयम्—एध् धातु से भाव में 'तव्यत्तव्यानीयर :'सेअनीयर् प्रत्यय प्राप्त होने पर

= एध् + अनीयर्

रेफ् की इत् संज्ञा तथा लोप = एध् + अनीय

'कृत्तद्धित.........सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा तथा विभक्ति कार्य होकर

= एधनीयम् रूप सिद्ध हुआ।

भाव में इसलिए हुए कि एध् धातु अकर्मक है। अकर्मक से भाव में वे प्रत्यय होंगे। कर्ता अनुक्त है, अत: 'त्वया' तृतीय विभक्ति में है।

भाव इति—भाव में सामान्य एक वचन, नपुंसक लिङ्ग हुआ। कर्म में ए प्रत्यय सकर्मक धातुओं के साथ आते हैं तब लिङ्ग वचन कर्म के अनुसार होते हैं।

चेतव्य:, चयनीयो वा धर्मस्त्वया (तुम्हें धर्म का संग्रह करना चाहिए)।

रूपसिद्धि—

चेतव्य:—यहाँ सकर्मक 'चि' (चिञ्) धातु से कर्म में

'तव्यत्तव्यानीयर:' सूत्र से तव्य प्रत्यय प्राप्त होने पर

= चि + तव्य

'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण होकर = च् + इ + तव्य

= च् + ए + तव्य

'कृत्तद्धितसमासाश्च' से प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर पुल्लिंग एक वचन में = चेतव्यः बना।

चयनीयः—यहाँ सकर्मक 'चि' धातु से कर्म में

'तव्यत्तव्यानीयरः' से अनीयर् प्रत्यय प्राप्त होने पर = चि + अनीयर्

रेफ की इत्संज्ञा तथा लोप होकर = चि + अनीय, 'सार्व धातुक......' सूत्र से इको गुण होकर = चे + अनीय, 'एचोऽयवायावः' से 'ए' को 'अय्' होकर = चय् + अनीय 'कृत्तद्धित.....' से प्रातिपदिक संज्ञा होकर चयनीय तथा विभक्ति कार्य होकर = चयनीयः रूप सिद्ध हुआ।

केलिमर उपसंख्यानम्

पचेलिमा भाषाः, पक्तव्या इत्यर्थः।

भिदेलिमाः सरलाः, भेक्तव्या इत्यर्थः। कर्मणि प्रत्ययः।

अर्थ—तव्यत् आदि की तरह कर्म और भाव में केलिमर् प्रत्यय का भी उपसंख्यान (कथन) करना चाहिए। के लिमर् के ककार और रेफ् इत्संज्ञक हैं। 'एलिम' शेष बचता है।

रूपसिद्धि—

पचेलिमाः माषा :—माष (उड़द) पकाने योग्य है।

यहाँ सकर्मक 'पच्' धातु से कर्म में 'केलिमर उपसंख्यानम्' सूत्र से 'केलिमर्'

प्राप्त होने पर = पच् + केलिमर्।

ककार एवं रेफ् इत्संज्ञक होने पर = पच् + एलिम

प्रातिपदिक एवं विभक्ति कार्य होने पर = पचेलिमाः रूप सिद्ध हुआ।

भिदेलिमाः सरलाः—(काटने योग्य सरल वृक्ष)

यहाँ भिद् धातु से कर्म में 'केलिमर् उपसंख्यानम्' से केलिमर् प्रत्यय होने पर =

भिद् + केलिमर्

ककार एवं रेफ् इत्संज्ञक होने पर = भिद् + एलिम

प्रातिपदिक एवं विभक्ति कार्य होकर = भिदेलिमाः रूप सिद्ध हुआ।

कर्मणीति—'पचेलिमाः' और भिदेलिमाः में केलिमर् प्रत्यय कर्म में हुआ, क्योंकि ये धातुएँ सकर्मक हैं।

कृत्य-ल्युटो बहुलम् ३।३।११३।।

अर्थ—कृत्य और ल्युट् प्रत्यय बहुल होते हैं।

व्याख्या—कृत्य संज्ञक एवं ल्युट् प्रत्यय बहुल अर्थों में होते हैं! यद्यपि कृत प्रत्यय भाव तथा कर्म में ही विहित हैं फिर भी इस सूत्र के अनुसार बहुलता के कारण अन्य कारकों में भी होते हैं। स्नाति अनेनेति स्नानीयं चूर्णम् तथा दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः में क्रमशः करण एवं सम्प्रदान में अनीयर् प्रत्यय हैं वैसे ही करण एवं अधिकरण तथा भाव में ल्युट् प्रत्यय होता है।

क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव। विधेर्विधानं बहुला समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति।।१।।

स्नाति-अनेन इति स्नानीयं चूर्णम्। दीयतेऽस्मै दानीयो विप्रः।

अर्थ—कहीं (प्रयोग विशेष में) प्रवृत्ति होना, कहीं प्रवृत्ति न होना, कहीं विकल्प से प्रवृत्ति होना और कहीं अन्य ही प्रकार होना। इस प्रकार विधि का विधान देखकर बुधजन बाहुलक को चार प्रकार का कहते हैं।

रूप सिद्धि—

स्नानीयम्—स्नाति अनेन इति स्नानीयं चूर्णम् (जिस चूर्ण से स्नान किया जाय उसे स्नानीय कहते हैं।)

यहाँ स्ना धातु से करण अर्थ में 'कृत्यल्युटोबहुलम्' के विधान से 'अनीयर' प्रत्यय प्राप्त होने पर = स्ना + अनीयर्

रेफ् लोप एवं सवर्ण दीर्घ होकर = स्ना + अनीय

= स्नानीय

प्रातिपदिक एवं विभक्ति कार्य होकर = स्नानीयम् रूप सिद्ध हुआ।

दानीयः—दीयतेऽस्मै विप्रः (देने योग्य विप्र)।

यहाँ 'दा' धातु से सम्प्रदान अर्थ में 'कृत्यल्युटो बहुलम्' सूत्र से अनीयर प्रत्यय होता है। शेष कार्य स्नानीयम् की तरह होंगे।

अचो यत् ३।१।९७।। (अचः + यत्)

अजन्ताद् धातोर्यत् स्यात्। चेयम्।

अर्थ—अजन्त (जिसके अन्त में स्वर हो) धातुओं से 'यत्' होता है।

व्याख्या—ऐसी धातुएँ जिनके अन्त में स्वर हो ऐसी अजन्त धातुओं से ही यत् प्रत्यय होगा। हलन्त धातुओं से नहीं होगा। 'यत्' प्रत्यय में 'य' शेष रहता है। तकार स्वरार्थ है। यत् प्रत्यय तव्यत् आदि सामान्य प्रत्ययों का अपवाद प्रत्यय है। क्योंकि इसका अजन्त धातुओं के साथ ही विधान है।

रूप सिद्धि—

चेयम्—चेतुं योग्यम् (चुनने योग्य)

यहाँ 'चि' धातु से अचो यत् इस सूत्र से

यत् प्रत्यय की प्राप्ति हुई = चि + यत्

त् की इत्संज्ञा होने पर = चि + य

'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण होकर = च् + ए + य

प्रातिपदिक संज्ञा, नपु. लि. में विभक्ति कार्य होकर = चेयम् रूप सिद्ध हुआ।

ईद्यति ६।४।६५।।

ईत् + यतिः

यति परे आत ईत् स्यात्। देयम्। ग्लेयम्।

अर्थ—'यत्' प्रत्यय परे होने पर आकार के स्थान पर ईकार हो।

रूप सिद्धि—

देयम्—(देने योग्य या देना चाहिए।)

यहाँ अजन्त 'दा' धातु से 'अचो यत्' सूत्र से यत् प्राप्त हुआ
= दा + यत्
त् की इत्संज्ञा होकर = दा + य
'ईद्यति' से आ को ई होकर = द् ई + य
'सार्वधातुक......से गुण होकर = द् ए + य
प्रातिपदिक तथा स्वादिकार्य होकर = देयम् रूप सिद्ध हुआ।

ग्लेयम्—(ग्लानि करनी चाहिए)

'ग्लै' धातु से भाव में यत् होकर = ग्लै + यत्
'आदेच उपदेशेऽशिति' से 'ऐ' को आकार होकर = ग्ला + य
'ईद्यति' सूत्र से आकार को ईकार होकर = ग्ल् ई + य
ईकार को गुण होकर = ग्ल् ए + य
प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = ग्लेयम् रूप सिद्ध हुआ।

पोरदुपधात् ३।१।९८।।

(पो : + अत् + उपधात्)

पवर्गान्ताद् अदुपधाद् यत् स्यात्। ण्यतोऽपवादः।

शप्यम्। लभ्यम्।

अर्थ—जिस धातु के अन्त में पवर्ग का कोई वर्ण हो तथा उपधा में अ हो, उससे 'यत्' प्रत्यय होता है।

व्याख्या—यह 'यत्' प्रत्यय 'ऋहलोर्ण्यत्' से प्राप्त 'ण्यत्' का बाधक है। ऋवर्णान्त तथा हलन्त धातुओं से ण्यत् का विधान है परन्तु यह सूत्र पवर्गान्त तथा अकारोपध धातुओं से ही 'यत्' प्रत्यय का विधान करता है।

रूप सिद्धि—

शप्यम्—(शाप के योग्य)

शप् धातु पवर्गान्त है। इसके अन्त में पकार है और इसकी उपधा में ह्रस्व अकार है, अतः इससे यद्यपि हलन्त होने के कारण 'ऋहलोर्ण्यत्' से 'ण्यत्' प्राप्त हुआ। उसको बाधकर प्रकृत सूत्र से 'यत्' प्रत्यय प्राप्त हुआ। अतः यत् का य जुड़कर प्रातिपदिक संज्ञा तथा विभक्ति कार्य होकर 'शप्यम्' रूप सिद्ध होता है।

लभ्यम्—(पाने योग्य)

यहाँ पवर्गान्त ह्रस्व अकार उपधा युक्त 'लभ्' धातु से 'पोरदुपधात्' से यत् (य) प्रत्यय होता है। शेष कार्य 'शप्यम्' की तरह होते हैं।

एति-स्तु-शास्-वृ-दृ-जुष : क्यप् ३।१।१०९।।

एभ्य : क्यप् स्यात्।

अर्थ—इण्, स्तु, शास्, वृ, दृ, और जुष धातु से क्यप् प्रत्यय हो।

व्याख्या—यह क्यप् प्रत्यय 'यत्' और 'ण्यत्' का बाधक है (शास् और जुष को हलन्त होने के कारण 'ण्यत्' प्राप्त था तथा शेष को अजन्त होने के कारण यत् प्राप्त था)।

क्यप् के ककार और पकार की इत्संज्ञा होती है। केवल 'य' शेष रहता है। यत् से इसका अन्तर कित् और पित् होने का है। कित् होने से क्यप् में गुण नहीं होता और पित् होने से 'ह्रस्वस्य......' सूत्र से तुक् का आगम होता है।

ह्रस्वस्य पिति कृति तुक ६।१।७१।।

इत्य : स्तुत्यः। शासु–अनुशिष्टौ।

अर्थ—ह्रस्व को तुक् आगम हो पित् कृत् परे रहते।

व्याख्या—पित् (जिसमें प् की इत्संज्ञा हो; जैसे—क्यप्, ल्यप् आदि) कृत् प्रत्यय परे रहने पर धातु के ह्रस्व स्वर को तुक् का आगम होता है। तुक् का 'त्' शेष रहता है तथा 'उक्' की इत्संज्ञा हो जाती है। जैसे—इत्यः स्तुत्यः आदि।

रूप सिद्धि—

इत्यः—जाने योग्य

यहाँ 'इण्' धातु से 'एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्' सूत्र से क्यप् प्रत्यय होता है।

= इण् + क्यप्

इत्संज्ञा होकर = इ + य

'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' से तुक् का आगम होकर = इ + त् + य

= इत्य

प्रातिपदिक संज्ञा एवं स्वादि कार्य होकर = इत्य : रूप सिद्ध होता है।

स्तुत्यः (स्तुति करने योग्य)

'स्तु' धातु से 'एतिस्तु......' सूत्र से क्यप् प्रत्यय होता है।

= स्तु + क्यप्

इत्संज्ञा होकर = स्तु + य

'ह्रस्वस्य पिति.....से तुक् का आगम = स्तु + त् + य

'क्ङिति च' से गुण का निषेध होकर = स्तुत्य बना

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = स्तुत्यः रूप सिद्ध होता है।

शासु इति यह धातु अदादि गण की है। यह अनुशासन अर्थ में प्रयुक्त है।

शास इद् अङ्-हलोः ६।४।३४।।

(शास् + इत् + अङ् + हलः)

शास उपधाया इत्स्यादङि हलादौ क्ङिति।

शिष्यः। वृत्यः आदृत्यः। जुष्यः।

अर्थ—शास् की उपधा को ह्रस्व इकार हो, अङ् और हलादि कित् ङित् प्रत्यय परे रहते।

रूप सिद्धि—

शिष्यः (अनुशासन करने योग्य)

'शास्' धातु से 'एतिस्तु……क्यप्' सूत्र से 'क्यप्' प्रत्यय प्राप्त होता है।

= शास् + क्यप्।

ऐसी स्थिति में हलादि कित् क्यप् प्रत्यय परे होने पर 'शास्' धातु की उपधा आकार को 'शास……हलो' से 'इकार' आदेश होने पर

= शिस् + य

'शासिवसिघसीनां च' से सकार को षकार होकर = शिष् + य

प्रातिपदिक संज्ञा तथा विभक्ति कार्य होकर = शिष्यः रूप सिद्ध होता है।

वृत्यः (वरण करने योग्य)

'वृ' धातु से 'एतिस्तु……क्यप् से 'क्यप्' प्रत्यय होने पर

= वृ + क्यप्

'ह्रस्वस्य पितिकृति तुक्' से 'तुक' का आगम = वृ + त् + य

प्रातिपदिक संज्ञा एवं स्वादि कार्य होकर = वृत्यः रूप सिद्ध होता है।

आदृत्यः (आदर करने योग्य)

'आङ्' उपसर्ग पूर्वक 'दृ' (आदर करना) धातु से 'एतिस्तु…..क्यप्' से 'क्यप्' होकर

= आ + दृ + क्यप्

'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' से तुक का आगम = आ + दृ + त् + य

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = आदृत्यः रूप सिद्ध होता है।

जुष्यः (सेवा करने योग्य)

'जुष्' धातु से 'एतिस्तु……क्यप्' सूत्र से क्यप् प्रत्यय होता है।

= जुष् + क्यप्

प्रादिपदिक संज्ञा तथा विभक्ति कार्य होकर = जुष्यः रूप सिद्ध होता है।

मृजेर्विभाषा ३।१।११३।।

मृजेः क्यप् वा स्यात्। मृज्यः।

अर्थ—'मृज्' धातु से 'क्यप्' विकल्प से हो।

व्याख्या—'मृज्' (साफ करना) धातु से विकल्प से 'क्यप्' प्रत्यय का विधान होता है। यह धातु हलन्त है। अतः उसे 'ऋहलोर्ण्यत्' सूत्र से ण्यत् प्राप्त था। अतः यहाँ सूत्र बाधक है।

रूपसिद्धि—

मृज्यः (साफ करने योग्य)

यहाँ 'मृज्' धातु से 'मृजेर्विभाषा' सूत्र से विकल्प से क्यप् प्रत्यय प्राप्त होता है—

= मृज् + क्यप्

= मृज् + य

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = मृज्यः रूप सिद्ध होता है।

ऋहलोर्ण्यत् ३।१।१२४।।

(ऋ + हल : + ण्यत्)

ऋवर्णान्ताद् हलन्ताच्च धातोर्ण्यत्। कार्यम्। हार्यम् धार्यम्।

अर्थ–ऋवर्णान्त और हलन्त धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय हो। 'ण्यत्' का य शेष रहता है, णकार और तकार इत्संज्ञक हैं।

रूप सिद्धि–

कार्यम् (करने योग्य)

'कृ' ऋ वर्णान्त सकर्मक धातु है। अतः 'ऋहलोर्ण्यत्'

सूत्र से 'ण्यत्' प्रत्यय होकर = कृ + ण्यत्

णकार एवं लकार की इत्संज्ञा होकर = कृ + य

'अचोञ्णिति' सूत्र से ऋकार को वृद्धि = क् आर् + य

= कार्य शब्द बना है।

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = कार्यम् रूप सिद्ध होता है।

हार्यम् (हरण करने योग्य)

'हृ' ऋवर्णान्त सकर्मक धातु है। अतः 'ऋहलोर्ण्यत्' सूत्र से ण्यत् प्रत्यय होकर हैं–

= हृ + ण्यत्

'अचोञ्णिति' से ऋकार को वृद्धि होकर = हार् + य

प्रातिपादिक संज्ञा तथा विभक्ति कार्य होकर = हार्यम् रूप सिद्ध होता है।

धार्यम् (धारण करने योग्य)

'धृ' धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' सूत्र द्वारा 'ण्यत्' प्रत्यय होकर

= धृ + ण्यत्

ण्, त् इत्संज्ञक होकर = धृ + य

'अचोञ्जिति' सूत्र से वृद्धि होकार = धार् + य

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = धार्यम् रूप सिद्ध होता है।

चजोः कुघिण्-ण्यतोः ७।३।५२।।

(च + जः + कु + घित् + ण्यत्)

चजोः कुत्वं स्यात् घिति ण्यति च परे।

अर्थ–चकार और जकार को कुत्व होता है घित् और ण्यत् प्रत्यय परे रहते।

व्याख्या–कुत्व से तात्पर्य कवर्ग (क, ख, ग, घ, ङ) से है। इस सूत्र से 'च्' के के स्थान पर 'क्' तथा 'ज्' के स्थान पर 'ग्' आदेश हो जाता है।

मृजेर्वृद्धिः ७।२।११४।।

(मृजे : + वृद्धि :)

मृजेरिको वृद्धि : सार्वधातुकाऽऽर्धधातुकयोः। मार्ग्यः।

अर्थ–'मृज्' धातु के इक् (इ, उ, ऋ, लृ) को वृद्धि हो सार्वधातुक आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते।

व्याख्या—वृद्धि-विधायक सूत्र 'अचोञ्णिति' एवं अत उपधाया: हैं। 'अचोञ्णिति' सूत्र से ञित् और णित् होने पर अजन्त अङ्ग की वृद्धि होती है और 'अत उपधाया:' सूत्र से ञित् और णित् प्रत्ययों के परे रहने पर अकार उपधा वाली धातुओं की वृद्धि होती है। यहाँ मृज् धातु न तो स्वरान्त है और न ही अकार उपधा युक्त। इसलिए 'मृजेर्वृद्धि:' सूत्र को प्रस्तुत किया गया है।

रूप सिद्धि—

मार्ग्यः—(शुद्ध करने योग्य)

'क्यप्' के अभाव में 'मृज्' धातु से ऋहलोर्ण्यत् सूत्र से

'ण्यत्' प्रत्यय होकर = मृज् + ण्यत्

ण्, त्, इत्संज्ञक होकर = मृज् + य

'चजो: कुघिण्ण्यतो:' से ज् से ग् होकर = मृग् + य

'मृजेर्वृद्धि' से ऋ को आर् वृद्धि होकर = मार् ग् + य

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = मार्ग्यः शब्द सिद्ध होता है।

भोज्यं भक्ष्ये ७।३।६९।।

भोग्यमन्यत्।

अर्थ—भक्षण करने योग्य अर्थ में भोज्य रूप बनता है।

व्याख्या—इस सूत्र का विधान भक्षणार्थक 'भुज' धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय परे रहते चजो: कुघिण्ण्यतो: से प्राप्त 'कुत्व' के अभाव में किया गया है।

रूप सिद्धि—

भोज्यम्—(भक्षण करने योग्य)

यहाँ 'भुज्' धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' से ण्यत् प्रत्यय होकर = भुज + ण्यत्

ण्, त् इत्संज्ञक होकर = भुज् + य

'चजो: कुघिण्ण्यतो:' से प्राप्त कुत्व का 'भोज्यं भक्ष्ये' से अभाव हो जाता है।

'पुगन्तलघूपधस्य च' से उ को गुण होकर = भ् ओ ज् + य

= भोज्य बना

प्रातिपदिक संज्ञा तथा विभक्ति कार्य होकर = भोज्यम् रूप सिद्ध होता है।

भोग्यम्—(उपभोग करने योग्य)

यहाँ पर 'भुज' धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' से 'ण्यत्' प्रत्यय होकर = भुज् + ण्यत्

ण्, त् इत्संज्ञक होकर = भुज् + य

'चजो : कुधिण्ण्यतो:' से ज् को ग् आदेश होकर = भुग् + य

'पुगन्तलघूपधस्य च' से उपधा को गुण होकर = भ् ओ ग् + य

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = भोग्यम् रूप सिद्ध होता है।

इति कृत्य प्रक्रिया

✤

अथ पूर्व कृदन्तम्

ण्वुल-तृचौ ३।१।१३३।।

धातोरेतौ स्तः। 'कर्तरि कृत्' इति कर्त्रर्थे।

अर्थ—धातु से ण्वुल और तृच् प्रत्यय हों।

व्याख्या—ण्वुल का वु और तृच् का तृ शेष रहता है। दोनों के अन्य भाग इत्संज्ञक हैं। ये प्रत्यय 'कर्तरि कृत्' सूत्र से कर्ता अर्थ में होते हैं।

युवोरनाऽकौ ७।१।१।।

(यु + वु + अन + अक:)

यु, वु एतयो: 'अनाऽकौ स्त:। कारक:। कर्ता।

अर्थ—यु और वु को क्रम से 'अन' और ' अक' आदेश हों।

रूप सिद्धि—

कारक: (करने वाला)।

'कृ' धातु से कर्ता अर्थ में 'ण्वुल् तृचौ' सूत्र से

ण्वुल् होकर = कृ + ण्वुल्

ण् एवं ल् इत्संज्ञक होकर = कृ + वु

'युवोरनाऽकौ' से 'अक' आदेश होकर = कृ + अक

'अचोञ्णिति' 'ऋ' को वृद्धि होकर = क् आर् + अक

= कारक

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = कारक: रूप सिद्ध होता है।

कर्ता—(करने वाला)

'कृ' धातु से कर्ता अर्थ में 'ण्वुलतृचौ' सूत्र से

तृच् होकर = कृ + तृच्

'सार्वधातुक....' सूत्र से ऋ को गुण होकर = क् अर् + तृ = कर्तृ

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर प्रथमा एकवचन में = कर्ता रूप सिद्ध होता है।

नन्दि ग्रहिपचाऽऽदिभ्यो ल्युणिन्यच: ३।१।१३४।।

(नन्दि + ग्रहि + पच् + आदिभ्य: + ल्यु + णिनि + अच:)

नन्द्यादेर्ल्यु :, ग्रह्यादेर्णिनि:, पचादेरच् स्यात्। नन्दयतीति नन्दन:, जनमर्दयतीति जनार्दन:, लवण:। ग्राही, स्थायी, मन्त्री। पचादिराकृतिगण:।

अर्थ—नन्द आदि धातुओं से 'ल्यु', ग्रह् आदि से 'णिनि' और पच् आदि से अच् प्रत्यय हो।

व्याख्या—'ल्यु' का यु, 'णिनि' का इन् और 'अच्' का अ शेष रहता है। अन्य इत्संज्ञक हैं। णिनि णित् है उसके पर वृद्धि होती है। ल्यु के यु को 'युवोरनाकौ' से अन आदेश होता है। ये तीनों प्रत्यय कर्ता अर्थ में होते हैं।

रूप सिद्धि—

नन्दनः—नन्दयति इति नन्दनः (आनन्दित करने वाला)।

प्रेरणाथक 'णिच्' प्रत्यान्त' नन्दि' धातु से 'नन्दि ग्रहि......अचः' सूत्र से ल्यु प्रत्यय होकर = नन्दि + ल्यु

ल् इत्संज्ञक होकर = नन्दि + यु

'युवोरनाकौ' से 'यु' को 'अन' होकर = नन्दि + अन

'णेरनिटि' से 'इ' (णिच्) का लोप होकर = नन्द् + अन

प्रातिपदिक संज्ञा तथा विभक्ति कार्य होकर = नन्दनः रूप सिद्ध होता है।

जनार्दनः—जनमर्दयति इति (दुष्टों का संहार करने वाले विष्णु)

जन उपपद युक्त णिच् प्रत्यान्त अर्द धातु से नन्दि ग्रहि.....अच्: से

'ल्यु' प्रत्यय होकर = जन + अर्द् + इ + यु

'युवोरनाकौ' से यु को अन होकर = जन + अर्द् + इ + अन

'णेरनिटि' से इ का लोप होकर = जन + अर्द् + अन

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = जनार्दनः रूप सिद्ध होता है।

लवणः—लुनाति इति (काटने वाला नमक)

यहाँ 'लूञ्' धातु से 'नन्दिग्रहि......अचः' सूत्र से

'ल्यु' प्रत्यय हाकर = लू + ल्यु

अनुबन्ध लोप होकर = लू + यु

'युवोरनाकौ' सूत्र से 'यु' को 'अन' होकर = लव् + अन

'सार्वधातुकार्धधातुकयोः से गुण आदि

तथा णत्व (ण) होकर = लव् + अण

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = लवणः रूप सिद्ध होता है।

ग्राही—गृह्णाति इति (ग्रहण करने वाला)

यहाँ 'ग्रह्' धातु से 'नन्दिग्रहि......अचः' सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय की प्राप्ति होती है।

= ग्रह् + णिनि

अनुबन्ध लोप होकर = ग्रह् + इन्

'अत् उपधायाः' सूत्र से उपधा के अ को वृद्धि होकर = ग्राह् + इन्

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर

प्रथमा एकवचन में 'हलङ्यादि' से न् लोप होकर = ग्राही रूप सिद्ध होता है।

स्थायी—तिष्ठति इति (ठहरने वाला)

यहाँ 'स्था' धातु से 'नन्दिग्रहि....अचः' सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय प्राप्त होता है—

= स्था + णिनि

'णिनि' के णित् होने पर = स्था + इन्

'आतो युक् चिण्कृतोः' से आकारान्त धातु

से युक् का आगम = स्था + युक् + इन्

= स्था + य् + इन् = स्थायिन्

प्रातिपदिक तथा विभक्ति कार्य होकर

प्रथमा एकवचन में = स्थायी रूप सिद्ध होता है।

मन्त्री—मन्त्रयति इति (सलाह देने वाला)

यहाँ 'णिच्' प्रत्यान्त चुरादि 'मन्त्रि' धातु से 'नन्दिग्रहि.....अचः'

सूत्र से णिनि प्रत्यय होकर = मन्त्रि + णिनि

'णिनि' के णित् होने पर = मन्त्रि + इन्

'णेरनिटि' से 'इ' का लोप होकर = मन्त्र् + इन् = मन्त्रिन्

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर

प्रथमा एकवचन में = मन्त्री रूप सिद्ध होता है।

पच—पचति इति (पकाने वाला)

'पच' आदि आकृतिगण है। इसलिए 'पच' धातु से 'नन्दिग्रहि....अचः' सूत्र से

'अच्' प्रत्यय होकर = पच् + अच् = पच् + अ

प्राति पदिक संज्ञा तथा विभक्ति कार्म होकर = पचः रूप सिद्ध होता है।

इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ३।१।१३५।।

(इक् + उपधा + ज्ञा + प्री + कृ + कः)

एभ्यः कः स्यात्। बुधः। कृशः। ज्ञः। प्रियः। किरः।

अर्थ—इक् उपधा वाली धातुओं से तथा ज्ञा, प्री और कृ धातुओं से क प्रत्यय होता है।

व्याख्या—इक् प्रत्याहार में (इ, उ, ऋ, लृ) आते हैं। इन वर्णों की उपधा वाली धातुओं से 'क' प्रत्यय का विधान है। 'क' का ककार की इत्संज्ञा होती है। 'अ' शेष रहता है। कित् होने से इसके परे रहते गुण वृद्धि का निषेध हो जाता है।

रूपसिद्धि—

बुधः—बुध्यते इति (जानने वाला)

यहाँ 'बुध्' धातु से 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' सूत्र से

'क' प्रत्यय होकर = बुध् + क

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = बुध् + अ = बुध
= बुधः रूप सिद्ध होता है।

कृशः—कृश्यति इति (दुर्बल)

यहाँ 'कृश्' धातु से 'इगु....कः' सेः 'क' प्रत्यय होकर = कृश् + क

अनुबन्धलोप होकर = कृश् + अ

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = कृशः रूप सिद्ध होता है

ज्ञः—जानाति इति (जानने वाला)

यहाँ 'ज्ञा' धातु से 'इगु.........कः' सूत्र से 'क' प्रत्यय होकर = ज्ञा + क
= ज्ञा + अ

'आतो लोप इटि च' से आकार लोप होकर = ज्ञ् + अ = ज्ञ

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = ज्ञः रूप सिद्ध होता है।

प्रियः—प्रीणाति इति (प्रसन्न करने वाला)

यहाँ 'प्रीञ्' धातु से 'इगु.....कः' सूत्र से 'क' प्रत्यय प्राप्त हुआ
= प्री + क
= प्री + अ

'अचिश्नुधातु......वङौ' सूत्र से ई को इयङ् (इय्) होकर = प्रिय् + अ = प्रिय

प्रातिपदिक संज्ञा तथा विभक्ति कार्य होकर = प्रियः रूप सिद्ध होता है।

किरः—किरति इति (बिखेरने वाला)

यहाँ 'कृ' धातु से 'इगु.....क' सूत्र से 'क' प्रत्यय प्राप्त हुआ
= कृ + क
= कृ + अ

'ऋत उद् धातोः से ऋ को इर् होकर = किर् + अ = किर

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = किरः रूप सिद्ध होता है।

आतश्चोपसर्गे ३।१।१३६

(आतः + च + उपसर्गे)

प्रज्ञः। सुग्लः

अर्थ—उपसर्ग सहित आदन्त धातु से 'क' प्रत्यय हो।

रूपसिद्धि—

प्रज्ञः—प्रकर्षेण जानाति इति (प्रकृष्ट जानने वाला, विद्वान)

'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'ज्ञा' धातु से 'आतश्चोपसर्गे' सूत्र से

'क' प्रत्यय प्राप्त हुआ = प्र + ज्ञा + क
= प्र + ज्ञा + अ

'आतो लोप इटि च' सूत्र से ज्ञा के आ का लोप होकर = प्र + ज्ञ् + अ
= प्रज्ञ

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = प्रज्ञः रूप सिद्ध होता है।

सुग्ल :—सुग्लायति इति (अच्छी तरह ग्लानि करने वाला)

यहाँ 'सु' उपसर्ग युक्त' 'ग्लै' धातु से 'क' प्रत्यय होकर = सु + ग्लै + क
= सु + ग्लै + अ

'उपदेशेऽशिति' सूत्र से 'ग्लै' के ऐ को आकार होकर = सु + ग्ला + अ

'आतो लोप इटि च' से आकार का लोप होकर = सु + ग्ल् + अ
= सुग्ल बना

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = सुग्लः रूप सिद्ध होता है।

गेहे कः ३।१।१४४।।

गेहे कर्तरि ग्रहेः कः स्यात्। गृहम्।

अर्थ—यदि गेह (घर) कर्त्ता अर्थ हो तो उस अर्थ में ग्रह् धातु से 'क' प्रत्यय हो।

रूप सिद्धि—

गृहम्—(घर)

यहाँ 'ग्रह्' (ग्रहण करना) धातु से 'गेहे कः' सूत्र से 'क'
प्रत्यय प्राप्त हुआ = ग्रह + क
= ग्रह् + अ

'ग्रहि......क्ङिति' सूत्र से र् को ऋ सम्प्रसारण होकर = गृह् + अ = 'गृह' बना

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = गृहम् रूप सिद्ध होता है।

कर्मण्यण् ३।२।११।।

(कर्मणि + अण्)

कर्मण्युपपदे धातोरण् प्रत्ययः स्यात्। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः।

अर्थ—कर्म उपपद रहते धातु से अण् प्रत्यय हो।

व्याख्या—अण् का ण्कार इत्संज्ञक है, केवल 'अ' बचता है। णित् होने पर इसके परे रहते वृद्धि होती है।

रूप सिद्धि—

कुम्भकारः—(घड़ा बनाने वाला, कुम्हार)

यहाँ 'कुम्भ' कर्म उपपद रहते 'कृ' धातु से 'अण्' प्रत्यय की प्राप्ति होती है।
= कुम्भ + कृ + अण्
= कुम्भ + कृ + अ

'अचोञ्णिति' से ऋ को वृद्धि होकर = कुम्भ + कार् + अ

यहाँ उपपद के साथ 'उपपदमतिङ्' से समास होकर = कुम्भ + अम् + कार् + अ
'सुपो....' से सुप् अम् का लोप होकर = कुम्भ + कार

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर प्रथम. एक वचन में = कुम्भकार: रूप सिद्ध होता है।

आतोऽनुपसर्गे क: ३।२।३।।

(आत: + अनुपसर्गे + क:)

आदन्ताद्धातोरनुपसर्गात्कर्मण्युपपदे क: स्यात्। अणोऽपवाद:। आतो लोप:। गोद:। धनद:। कम्बलद:। अनुपसर्गे किम् ? गोसन्दाय:।

अर्थ—उपसर्ग रहित आदन्त धातु से कर्म उपपद रहते 'क' प्रत्यय हो।

व्याख्या—यहाँ 'क' प्रत्यय 'अण्' प्रत्यय का सरूप प्रत्यय होने से नित्य बाधक है। यहाँ पर 'आतो लोप इटि च' से 'आ' का लोप होता है; जैसे—गोद: आदि।

रूप सिद्धि—

गोद:—गाम् ददाति इति (गाय देने वाला)

यहाँ उपपद 'गो' का अपने उत्तरवर्ती पद से समास होकर तथा 'दा' धातु से 'क' प्रत्यय हुआ = गो + अम् + दा + क = गो + अम् + दा + अ

'सुपो......से उपपद के आगे की विभक्ति का लोप होकर = गो + दा + अ

'आतो लोप इटि य' से आकार का लोप होकर = गो + द् + अ = गोद

प्राति. संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर प्रथमा एकवचन में = गोद: रूप सिद्ध होता है।

धनद:—धनं ददाति इति (धन देने वाला, कुबेर)

पूर्व की भाँति कर्म 'धन' उपपद होने पर 'दा' धातु से

'आतोऽनुपसर्गे क:' सूत्र से 'क' प्रत्यय होकर = धन + दा + क
= धन + दा + अ

'आतो लोप इटि च' से आकार का लोप होकर = धन + द् + अ

'धन' का 'द' के साथ उपपद समास होकर = धनद

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = धनद: रूप सिद्ध होता है।

कम्बलद:—कम्बलं ददाति इति (कम्बल देने वाला)

यहाँ कर्म 'कम्बल' उपपद रहते 'दा' धातु से

'आतोऽनुपसर्गे क:' से 'क' प्रत्यय होकर = कम्बल + दा+ क
= कम्बल + दा + अ

'आतो लोप इटि च' से आकार का लोप होकर = कम्बल + द् + अ

'कम्बल' का द के साथ समास होकर = कम्बलद

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कर्म होकर = कम्बलद: रूप सिद्ध होता है।

अनुपसर्गे इति—आकारान्त धातु के साथ उपसर्ग नहीं होना चाहिए ऐसा क्यों कहा? इसका समाधान करते हुए कहा गया है कि जैसे गो संदाय (गां संददाति—गाय को देता है) इस अर्थ में गो अम् सं दा यहाँ सम् उपसर्ग का योग होने से आकारान्त होने पर भी 'दा' धातु से 'क' प्रत्यय नहीं हुआ। तब 'कर्मण्यण्' से अण् प्रत्यय हुआ। 'आतो युक् चिणकृतोः से युक् का आगम हुआ। समास होने की स्थिति में सुप 'अम्' का लोप हुआ तथा प्राति पदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर 'गोसन्दायः' रूप सिद्ध होता है।

(वा) मूलविभुजादिभ्यः कः

(मूल विभुज + आदिभ्यः + कः)

मूलानि विभुजतीति मूलविभुजो रथः। आकृति गणोऽयम् महीध्र : कुध्रः।

अर्थ—मूलविभुज आदि शब्दों में क प्रत्यय हो। यह आकृति गण है।

व्याख्या—यह वार्तिक भी पूर्व की भाँति 'कर्मण्यण्' का बाधक है।

शब्द सिद्धि—

मूल-विभुज—मूलानि विभुजति (जड़ो को तोड़ने वाला, रथ)।

यहाँ 'मूल' उपपद होने से 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'भुज' धातु से

'मूल विभुज.....कः' वार्तिक से 'क' प्रत्यय होकर = मूलविभुज् + क

= मूलविभुज् + अ

मूल का विभुज के साथ उपपद समास होकर = मूल विभुज

प्रातिपदिक संज्ञा एवं स्वादि कार्म होकर प्रथमा एक वचन में—मूलविभुजः रूप सिद्ध होता है।

महीध्र :—महीं धरति इति (पृथ्वी को धारण करने वाला)।

यहाँ महीम् उपपद से 'धृ' धातु से 'क' प्रत्यय होकर = मही + अम् + धृ + क

= मही + अम् + धृ + अ

'क्ङिति च' से गुण निषेध एवं ऋ को यण् होकर = मही + अम् + ध् + र् + अ

= मही + अम् + ध्र

मही + अम् का ध्र के साथ उपपद समास एवं 'अम्' विभक्ति का लोप होकर

= महीध्र बना

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर प्रथमा एक वचन में = महीध्रः रूप सिद्ध होता है।

कुध्रः—कुं (पृथवी) धरति इति (पृथ्वी को धारण करने वाला)

पूर्व 'महीध्रः' की भाँति कु अम् उपपद से धृ धातु से

क प्रत्यय होकर = कु अम् + धृ + क

= कु अम् + धृ + अ

'इकोयणचि' से यण् होकर = कु अम् + ध् + र् + अ

कु अम् का धृ के साथ उपपद समास—

एवं विभक्ति 'अम्' का लोप होकर = कु + ध्र बना

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = कुध्रः शब्द सिद्ध होता है।

चरेष्टः ३।२।१६।। चरेष्टः ३।२।१६।। (चरेषु + टः)

अधिकरणे उपपदे। कुरुचरः।

अर्थ—अधिकरण उपपद रहते हुए चर् धातु से 'ट' प्रत्यय हो।

व्याख्याः—'ट' प्रत्यय के टकार की इत्संज्ञा होती है। 'अ' शेष बचता है। टित् होने के कारण स्त्रीलिङ्ग में 'टिड्.....क्वरपः' सूत्र से ङीप् प्रत्यय होता है।

रूप सिद्धि—

कुरुचरः—कुरुष चरति इति (कुरु प्रदेश में घूमने वाला)

यहाँ 'कुरु सुप् चर्' इस स्थिति में 'ट' प्रत्यय होकर

= कुरु सुप् + चर् + ट

= कुरु सुप् + चर् + अ

यहाँ कुरु सुप् का चर् के साथ समास होकर एवं सुप् विभक्ति का लोप होकर

= कुरु चर बना

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर प्रथमा एक वचन में = कुरुचरः रूप सिद्ध होता है।

टित् होने से स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होकर 'कुरुचरी' रूप बनता है।

भिक्षासेनादायेषु च ३।२।१७।।

(भिक्षा + सेना + आदायेषु + च)

अर्थ—भिक्षा, सेना और आदाय शब्द उपपद होने पर 'चर' धातु से 'ट' प्रत्यय होता है। इसमें 'आदाय' शब्द 'ल्यप्' प्रत्ययान्त है।

रूप सिद्धि—

भिक्षाचरः—भिक्षा चरति (भिक्षा लाने वाला)

यहाँ 'भिक्षा' उपपद होने से चर् धातु से

'भिक्षा सेनादायेषु' सूत्र से 'ट' प्रत्यय होकर = भिक्षा + चर् + ट

= भिक्षा + चर् + अ

भिक्षा का चर के साथ उपपद समास होकर = भिक्षाचर बना

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर प्रथमा एक वचन में = भिक्षाचरः रूप सिद्ध होता है।

सेनाचरः—सेनायां चरति इति (सेना में रहने वाला, सिपाही)।

'सेना' शब्द उपपद होने से 'चर्' धातु से 'ट' प्रत्यय होकर

= सेना + चर् + ट

= सेना + चर् + अ

सेना का चर के साथ उपपद समास होकर = सेनाचर बना

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर प्रथमा एक वचन में = सेनाचरः शब्द सिद्ध होता है।

आदायचरः—आदाय चरति इति (लेकर चलने वाला)।

'ल्यप्' प्रत्ययान्त 'आदाय' उपपद होने से चर् धातु से

'ट' प्रत्यय होकर = आदाय + चर् + ट

= आदाय + चर् + अ

'आदाय' का 'चर' के साथ उपपद समास होने पर = आदायचर बना

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = प्रथमा एकवचन में = आदायचरः रूप सिद्ध होता है।

कृञो हेतु-ताच्छील्याऽऽनुलोम्येषु ३।२।२०।।

(कृञ् + हेतु + ताच्छील्य + अनुलोम्येषु)

एषुद्योत्येषु करोति : 'टः' स्यात्

अर्थ—हेतु, ताच्छील्य और आनुलोम्य यदि द्योत्य हों तो कुछ धातु से 'ट' प्रत्यय हो।

व्याख्या—यहाँ ताच्छील्य स्वभाव एवं 'आनुलोम्य' अनुकूलता के अर्थ में है।

अतः कृ-कमि-कंस-कुम्भ-पात्र-कुशा-कर्णीष्वनव्ययस्य ८।३।४६।।

आद् उत्तरस्याऽव्ययस्य विसर्गस्य समासे नित्यं साऽऽदेशः 'करोति' आदिषु परेषु। यशस्करी विद्या। श्राद्ध-करः। वचन करः।

अर्थ—अकार से परे वर्तमान विसर्ग, जो विसर्ग अव्यय का न हो, के स्थान में नित्य सकार आदेश हो। समास में कृ धातु, कम् धातु, कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा और कर्ण शब्द परे रहते।

यह सूत्र विसर्गों के स्थान में प्राप्त जिह्वामूलीय और उपमध्मानीय का बाधक है।

रूप सिद्धि—

यशस्करी विद्या = यशः करोति तद्धेतुः (यश का हेतु विद्या)।

यहाँ यशः (कर्म) उपपद से 'कृ' धातु से

(कृञो हेतु......सूत्र से 'ट' प्रत्यय होकर = यशः + कृ + ट

= यशः + कृ + अ

ऋ को गुण होकर = यशः + कर् + अ

'अतः.......अनव्ययस्य' से कृञ् धातु के आगे रहते

विसर्ग को सकार आदेश = यशस् + कर् + अ

यशस् का कर् के साथ उपपद समास होकर = यशस्कर शब्द बना

स्त्रीत्व की विवक्षा में 'ङीप्' प्रत्यय होकर = यशस्कर + ङीप् (ई)
'यस्यति च' से अकार का लोप होकर = यशस्कर् + ई
= यशस्करी रूप सिद्ध होता है।

श्राद्धकर: श्राद्धं करोति तच्छील: (स्वभाव से श्राद्ध करने वाला)।

श्राद्ध अम् (कर्म) उपपद रहते कृञ् (कृ) धातु से
'ट' प्रत्यय होकर = श्राद्ध + अम् + कृ + ट
= श्राद्ध + अम् + कृ + अ
ऋ को गुण अर् होकर = श्राद्ध + अम् + कर् + अ

श्राद्ध अम् का कर के साथ उपपद समास
एवं अम् का लोप होकर = श्राद्धकर बना
प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = श्राद्धकर: रूप सिद्ध होता है।

वचन कर : वचनं करोति (कहे हुए को करने वाला)।

यहाँ वचन अम् (कर्म) उपपद से 'कृञ्' धातु से
'कृञो हेतु....सूत्र से 'ट' प्रत्यय होकर = वचन अम् + कृ + ट
= वचन अम् + कृ + अ
ऋ को गुण अर् होकर = वचन अम् + कर् + अ

वचन अम् का कर के साथ समास एवं अम् का लोप = वचनकर
प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = वचनकर: रूप सिद्ध होता है।

एजे: खश् ३।२।२८।।

ण्यन्तादेजे खश् स्यात्

अर्थ—ण्यन्त एज् (काँपना) धातु से 'खश्' प्रत्यय हो। 'खश्' प्रत्यय के खकार और श्कार इत्संज्ञक हैं। अकार ही शेष रहता है।

अरुर्द्विषद्-अजन्तस्य मुम् ६।३।६७।।

अरुषो द्विषतोऽजन्तस्य च 'मुम्' आगम: स्यात् खिदन्ते परे नतुअव्ययस्य। शित्त्वात् शवादि:। 'जनमेजयति' इति जनमेजय:।

अर्थ—अरुष् (मर्म) द्विषत् (शत्रु) और अजन्त शब्दों को मुम् आगम हो खिदन्त परे रहते परन्तु अव्यय को 'मुम्' नहीं होता। 'मुम्' में उ तथा म् की इत्संज्ञा होती है। केवल 'म' शेष रहता है।

शित्वाद् इति—'खश्' के शित् होने से उसके परे रहते 'शप्' आदि होते हैं। शित् होने से 'तिङ् शित्–सार्वधातुकम्' सूत्र से खश् की सार्वधातुक संज्ञा होती है। तब 'शप्' आदि प्रत्यय इसके परे होते हैं।

रूप सिद्धि—

जनमेजयः जनमेजयति (लोगों को कँपाने वाला)।

यहाँ णिजन्त 'एज्' धातु से णिच के साथ 'एजेः खश्' सूत्र से 'खश्'

प्रत्यय हो कर = जन + एजि + खश्

= जन + एजि + अ

'खश्' के शित् होने से 'कर्तरिशप्' से शप् का आगम

= जन + एजि + अ(शप्) + अ

'अतो गुणे' से पररूप होकर (पूर्व अकार का लोप)

= जन + एजि + अ

'तिङ् शित्......से सार्वधातुक संज्ञा तथा 'इ' को गुण होकर

= जन + एज् + ए + अ

'एचोऽयवायावः' से ए को अय् आदेश होकर = जन + एज् + अय् + अ

'अरुर्द्विषद-मुम' से अजन्त जन को मुम् का आगम = जन् + म् + एजय

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = जनमेजयः रूप सिद्ध होता है।

प्रिय वशे वदः खच् ३।२।३८।।

प्रियंवदः। वंशवदः।

अर्थ—प्रिय और वश कर्म उपपद रहते वद् धातु से खच् प्रत्यय हो।

व्याख्या—'खच्' के खकार और चकार इत्संज्ञक हैं। केवल अ शेष रहता है। खित् होने से इसके परे रहते 'मुम्' का आगम होता है।

रूप सिद्धि—

प्रियंवदः प्रियं वदति इति (प्रिय बोलने वाला)।

यहाँ 'प्रिय' उपपद होने के कारण 'वद्' धातु से

'प्रियवशे वदः खच्' सूत्र से खच् प्रत्यय होकर = प्रिय + वद् + खच्

= प्रिय + वद् + अ

'अरुर्द्विषद्......मुम्' से मुम् का आगम = प्रिय + म् + वद् + अ

म् का अनुस्वार होकर = प्रियंवद शब्द बना

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = प्रियंवदः रूप सिद्ध होता है।

वशंवदः वशे वदति (वश में रहने वाला)।

'वश' उपपद युक्त 'वद्' धातु से 'खच्' प्रत्यय होकर = वश + वद् + खच्

= वश + वद् + अ

'अरुर्द्विषद्.....मुम्' से मुम् का आगम = वश + म् + वद् + अ

म् का अनुस्वार होकर = वशंवद शब्द बना

प्रातिपदिक संज्ञा विभक्ति कार्य होकर = वशंवदः रूप सिद्ध होता है।

अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ३।२।७५।।

मनिन् कनिप् वनिप् विच-एते प्रत्यया धातोः स्युः।

अर्थ—मनिन्, क्वनिप्, वनिप् और विच् प्रत्यय अन्य धातुओं से भी हों।

व्याख्या—उपर्युक्त 'आतो मनिन्-क्वनिप् वनिपश्च' सूत्र से प्राप्त प्रत्यय आकारान्त धातुओं से किए गए हैं। 'आतो-मनिन्......इस सूत्र के बाद का यह सूत्र है। यह आकारान्त से भिन्न धातुओं से भी इन प्रत्ययों का विधान करता है। मनिन् का इन् क्वनिप् का क्, वनिप् का इप् और विच् सम्पूर्ण इत्संज्ञक हैं। मनिन् का मन्, क्वनिप् और वनिप् का वन् शेष रहता है। क्वनिप् में कित् होने से गुण वृद्धि नहीं होते। क्वनिप् और वनिप् पित् हैं; अतः इनके परे रहते पूर्व ह्रस्व वर्ण को 'तुक्' आगम होता है।

नेड् वशि कृति ७।२।८।।

वशादेः कृत इण् न स्यात्। शृ हिंसायाम्-सुशर्मा। प्रातरित्वा।

अर्थ—वश् प्रत्याहार आदि वाले कृत् प्रत्यय को 'इट्' का आगम नहीं होता।

रूप सिद्धि—

सुशर्मा—शोभनं शृणाति (अच्छी तरह हिंसा करता है)।

यहाँ 'सु' उपसर्ग युक्त 'शृ' धातु से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते'
सूत्र से 'मनिन्' प्रत्यय होकर = सु + शृ + मनिन्
= सु + शृ + मन्

आर्धधातुक होने से मन् के परे रहते (ऋ > अर्) गुण होकर = सु + शर् + मन्

वलादि होने से प्राप्त इड् का 'नेड् वशि कृति' से निषेध = सु + शर्मन्

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर प्रथमा एकवचन में = सुशर्मा रूप सिद्ध होता है।

प्रातरित्वाः—प्रातः एति (प्रातः जाने वाला)।

यहाँ 'प्रातर्' पूर्वक इण् धातु से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते'
सूत्र से क्वनिप् प्रत्यय होकर = प्रातर् + इण् + क्वनिप्
= प्रातर् + इ + वन्

पित् होने से 'ह्रस्वस्य.......तुक्' से तुक् (त्) का आगम = प्रातर् + इ + त् + वन्
= प्रातरित्वन्

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर प्रथमा एक वचन में = प्रातरित्वा शब्द सिद्ध होता है।

विडवनोरनुनासिकस्यात् ६।४।४१।।

अनुनासिकस्याऽऽत्स्यात्। विजायत इति विजावा। ओणृ अपनयने अवावा। विच्-रुष रिष हिंसायाम्। रोट्, रेट्, सुगण्।

अनुनासिक वर्ण को आकार हो।

अर्थ—विट् और वन् प्रत्यय परे रहते अनुनासिक वर्ण को आकार हो।

व्याख्या—'विट्' प्रत्यय वेद में प्राप्त होता है। 'वन्' से तात्पर्य क्वनिप् और वनिप् दोनों से है क्योंकि इन दोनों का 'वन्' शेष रहता है।

रूप सिद्धि—

विजावा—विजायते (विविध प्रकार से होने वाला)।

वि उपसर्ग पूर्वक 'जन्' धातु से 'वनिप्' प्रत्यय होकर = वि + जन् + वनिप्
= वि + जन् + वन्
= वि + जा + वन्

वनिप् के परे 'न्' को आकार आदेश होकर = विजावन् बना।

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर प्रथमा एक वचन में = विजावा रूप सिद्ध होता है।

अवावा:—ओणति अपनयति इत्यर्थः (हटाने वाला)।

'ओण्' (हटाना) धातु से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' सूत्र से
वनिप् प्रत्यय होकर = ओण् + वनिप्
= ओण् + वन्

अनुनासिक वर्ण 'ण्' को 'विडवनो......से आकार होकर = ओ + आ + वन्

ओ को 'एचोऽयवायाव:' से अवादेश होकर = अव् + आ + वन् = अवावन् बना।

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर प्रथमा एक वचन में = अवावा रूप सिद्ध होता है।

रोट्, रेट्—(हिंसक अर्थ में)

इन दोनों 'रुष्' और रिष् धातु से विच प्रत्यय होता है। इसका सम्पूर्ण लोप होने पर लघूपध गुण होकर रोष् और रेष् शब्द बनते हैं। प्र. ए. व. में सु के सकार का लोप होने पर षकार को डकार होकर रोट् एवं रेट् शब्द निष्पन्न होते हैं।

सुगण्—सुष्ठु गणयति (अच्छी प्रकार गिनने वाला)

'सु' उपसर्ग पूर्वक 'गण्' धातु से 'विच्' प्रत्यय होकर = सु + गण् + विच्
'विच्' का सर्वापहार लोप होकर = सु + गण्
प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = सुगण् रूप सिद्ध होता है।

क्विप् च ३।२।७६।।

अयमपि दृश्यते। उखास्रत्। पर्णध्वत्। नाहभ्रट्।

अर्थ—क्विप् प्रत्यय भी धातु से होता है कर्ता अर्थ में।

व्याख्या—क्विप् का विच् की तरह सर्वापहार लोप होता है। कित् होने से गुण वृद्धि का निषेध, पित् होने से यदि धातु ह्रस्वान्त हो तो तुक् का आगम तथा यदि धातु में नकार हो तो उसका लोप होता है।

उखास्रत्—उखायाः स्रंसते (पतीली से गिरने वाला)
'उख' पूर्वक 'स्रंस् धातु से 'क्विप् च' से
क्विप् प्रत्यय होकर = उख + स्रंस् + क्विप्
'क्विप्' का सर्वापहार लोप होकर = उख + स्रंस्
'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' से 'न' का लोप = उख + स्रस
उपपद समास एवं सुप् 'ङसि' का लोप होकर = उखस्रस बना
प्रथमा एक वचन में स को द और चर् होकर = उखस्रत् रूप सिद्ध होता है।

पर्ण-ध्वत्—पर्णात् पर्णेभ्यः वा ध्वंसते (पत्ता या पत्तों से गिरने वाला)
'पर्ण' पूर्वक 'ध्वंस्' धातु से 'क्विप् च' सूत्र से 'क्विप्' प्रत्यय होकर
= पर्ण + ध्वंस् + क्विप्
'क्विप्' प्रत्यय का सर्वापहार लोप होकर = पर्ण + ध्वंस्
'अनिदितां हल.......सूत्र से ध्वंस् के न का लोप = पर्ण + ध्वस्
प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = पर्णध्वत् रूप सिद्ध होता है।

वाहभ्रट्—वाहात् भ्रंशते (अश्व से गिरने वाला)।
'वाह' पूर्वक 'भ्रंश्' धातु से 'क्विप् च' सूत्र से
क्विप् प्रत्यय होकर = वाह + भ्रंश् + क्विप्
'क्विप्' का सर्वापहार लोप होकर = वाह + भ्रंश्
'भ्रंश्' धातु के 'न' का लोप होकर = वाह + भ्रश्
प्रथमा एक वचन में श् को ष् तथा उसे जश् डकार होकर = वाह + भ्रड्
चर् (च, ट, त, व) विकल्प से होकर) = वाहभ्रट् शब्द सिद्ध होता है।

सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ३।२।७८।। (सुप् + अजातौ + णिनिः + ताच्छील्ये)
अजात्यर्थे सुपि धातोर्णिनिः ताच्छील्ये द्योत्ये। उष्ण भोजी।

अर्थ—जातिवाचक से भिन्न सुबन्त उपपद रहते धातु से णिनि प्रत्यय हो जब ताच्छील्य (स्वभाव) बताना हो।

शब्द सिद्धि—

उष्णभोजी—उष्णं भुङ्क्ते तच्छीलः (गरम भोजन करने की आदत वाला)।
यहाँ उष्ण सुबन्त उपपद रहते 'भुज्' धातु से
ताच्छील्य अर्थ में 'णिनि' प्रत्यय प्राप्त हुआ = उष्ण + भुज् + णिनि
उपपद समास एवं सुप् अम् का लोप होकर = उष्ण + भुज् + इन्
सार्वधातुकार्धधातुकयोः से उ को गुण होकर = उष्ण + भोज् + इन्
= उष्णभोजिन् बना
प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = उष्णभोजी रूप सिद्ध होता है।

मनः ३।२।८२।।

सुपि मन्यतेर्णिनिः स्यात्। दर्शनीय-मानी

अर्थ—सुबन्त उपपद रहते मन् धातु से णिनि प्रत्यय हो।

रूप सिद्धि—

दर्शनीय-मानी—दर्शनीयं मन्यते (सुन्दर समझने वाला)।

यहाँ सुबन्त 'दर्शनीय' उपपद के साथ 'मन्' धातु से 'मन'
सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय प्राप्त हुआ = दर्शनीय + मन् + णिनि
= दर्शनीय + मन् + इन्

'अत् उपधायाः' से 'मन्' धातु के अ को वृद्धि = दर्शनीय + मान् + इन्

प्रातिपादिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर

प्रथमा एकवचन में उपधा को वृद्धि तथा नकार का लोप होकर = दर्शनीय-मानी रूप सिद्ध होता है।

आत्ममाने खश्च ३।२।८३।।

स्वकर्मके मनने वर्तमानान्मन्यतेः सुपि खश् स्यात्।

चात् णिनिः। पण्डितम् आत्मानं मन्यते पण्डितं-मन्यः, पण्डितमानी।

अर्थ—स्वकर्मक मनन अर्थ में वर्तमांन मन् धातु से सुबन्त उपपद रहते खश् प्रत्यय भी हो।

व्याख्या—स्वकर्मक मनन का तात्पर्य है 'अपने को मानना' 'खश्' के शित् होने से सार्वधातुक संज्ञा होने पर श्यन् होता है। 'श्यन्' को अकार का खश् के अकार के साथ 'अतोगुणे' से पररूप हो जाता है, खित् होने से पूर्व अजन्त शब्द को मुम् का आगम होता है।

चात्णिनिरिति—सूत्रानुसार च (भी) होने से णिनि प्रत्यय भी होता है।

पण्डितम्मन्यः—पण्डितमात्मानं मन्यते (अपने आपको पण्डित मानता है)।

यहाँ 'पण्डित' सुबन्त उपपद रहने पर 'मन्' धातु से
'आत्ममाने खश्च' सूत्र से 'खश्' प्रत्यय होकर = पण्डित + मन् + खश्
= पण्डित + मन् + अ

'खश्' में शित् होने से सार्वधातुक संज्ञा एवं
'दिवादिभ्यः श्यन्' सूत्र से श्यन् का आगम होकर = पण्डित + मन् + श्यन् + अ
= पण्डित + मन् + य + अ

'अतोगुणे' से पर रूप 'अ' होकर = पण्डित + मन् + य

'अरुर्द्विपद.......मुम्' से मुम् का आगम होकर = पण्डित + म् + मन् + य

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = पण्डितम्मन्यः रूप सिद्ध होता है।

पण्डित-मानी—'खश्' प्रत्यय के अभाव में चकार के द्वारा णिनि प्रत्यय हुआ 'पण्डित' सुबन्त उपपद रहते 'मन्' धातु से 'णिनि' प्रत्यय होकर पण्डित + मन् + इ तथा 'मन्' धातु के अ को वृद्धि होकर पण्डित + मान् + इन् = 'पण्डितमानिन्' शब्द बना। इसकी प्रातिपदिक संज्ञा तथा स्वादि कार्य होकर नकार का लोप होकर 'पण्डितमानी' रूप सिद्ध होता है।

खित्यनव्ययस्य ६।३।६६।।

खिदन्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्वः न-त्वव्ययस्य। ततो मुम्। कालिं-मन्या।

अर्थ—खिदन्त परे रहते पूर्वपद को ह्रस्व हो किन्तु अव्यय को न हो।

रूप सिद्धि—

कालिम्मन्या—आत्मानं कालीं मन्यते (अपने को काली मानने वाली)।

यहाँ 'काली' सुबन्त उपपद होने पर 'मन्' धातु से

'आत्ममाने खश्च' सूत्र से 'खश्' प्रत्यय होकर = काली + मन् + खश्

= काली + मन् + अ

'शित्' होने से सार्वधातुक संज्ञा एवं 'श्यन्' का आगम होकर

= काली + मन् + श्यन् + अ

= काली + मन् + य

'अतोगुणे' से 'अ' पररूप होकर = काली + मन् + य

'अरुर्द्विपद......मुम्' से काली को मुम् का आगम होकर

= काली + मन् + य + अ

'खित्यनव्ययस्य' से ह्रस्व होकर = कालि + म् + मन् + य

स्त्रीत्व विवक्षा में 'टाप्' प्रत्यय होकर = कालिम्मन्या बना।

प्रथमा एकवचन में विभक्ति कार्य होकर = कालिममन्या रूप सिद्ध होता है।

करणे यजः ३।२।८५।।

करणे उपपदे भूतार्थ यजेर्णिनिः स्यात् कर्तरि। सोमेनेष्टवान् सोमयाजी। अग्निष्टोमयाजी।

अर्थः—करण उपपद रहते भूतकाल में यज् धातु से णिनि प्रत्यय हो कर्ता अर्थ में।

रूप सिद्धि—

सोम याजी—सोमेन इष्टवान् (जिसने सोम नामक यज्ञ किया हो)।

यहाँ करण कारक 'सोम' उपपद होने से 'यज्' धातु से भूतकालिक कर्ता अर्थ में 'करणे यजः' सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय हुआ था उपपद समास एवं सुप् (टा) का लोप होकर

= सोम + यज् + णिनि

= सोम + यज् + इन्

'अत उपधाया:' से उपधा को वृद्धि होकर = सोम + याज् + इन्

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य से = सोमयाजिन्

(प्रथमा एक वचन में) उपधा दीर्घ एवं न लोप होकर = सोमयाजी रूप सिद्ध होता है।

अग्निष्टोमयाजी—अग्निष्टोमेन इष्टवान् (जिसने अग्निष्टोम यज्ञ किया हो)।

यहाँ 'अग्निष्टोम' उपपद होने से 'यज्' धातु से भूतकालिक कर्ता अर्थ में 'करणे यज:' सूत्र से 'णिनि' प्रत्यय होकर तथा उपपद समास एवं सुप् (टा) का लोप होकर

= अग्निष्टोम + यज् + णिनि

= अग्निष्टोम + यज् + इन्

'अत उपधाया:' से उपधा वृद्धि होकर = अग्निष्टोम + याज् + इन्।

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य से (प्रथमा एक वचन में) उपधा दीर्घ एवं 'न' लोप होकर = अग्निष्टोमयाजी रूप सिद्ध होता है।

दृशेः क्वनिप् ३।२।९४।।

कर्मणि भूते। पारं दृष्टवान्—पार दृश्वा

अर्थ—कर्म उपपद रहते भूतकाल में वर्तमान दृश् धातु से कर्ता अर्थ में क्वनिप् प्रत्यय हो।

रूप सिद्धि—

पारदृश्वा—पारं दृष्टवान् (जिससे पार देख लिया है)।

'पार' कर्म के उपपद पूर्वक 'दृश्' धातु से भूतकालिक कर्ता अर्थ में दृशेः क्वनिप्' से 'क्वनिप्' प्रत्यय होकर तथा उपपद समास एवं सुप् (अम्) का लोप होकर

= पार + दृश् + क्वनिप्

= पार + दृश् + वन्

= **पारदृश्वन्**

प्रातिपदिक संज्ञा एवं प्रथमा एव वचन में उपधादीर्घ और नकार का लोप होकर = पारदृश्वा रूप सिद्ध होता है।

राजनि युधि कृञः ३।२।९५।।

क्वनिप् स्यात्। युधिरन्तर्भावितण्यर्थः। राजानं योधितवान् राजयुध्वा राजकृत्वा।

अर्थः—राजन् कर्म उपपद रहते युध् और कृञ धातु से क्वनिप् प्रत्यय हो।

व्याख्या:—युध् धातु अन्तर्भावित ण्यर्थ ली जाती है। यहाँ णि का अर्थ इसके अन्दर छिपा रहता है।

रूप सिद्धि—

राजयुध्वा—राजानं योधितवान् (जिसने राजा को युद्ध करवाया हो)।

यहाँ राजन् अम् 'युध्' से 'राजनि युधि कृञः' सूत्र से क्वनिप् प्रत्यय प्राप्त हुआ। उपपद समास एवं सुप् (अम्) का लोप होकर

= राजन् + युध् + क्वनिप्

= राजन् + युध् + वन्

न लोपः......' से राजन् के 'न' का लोप होकर = राज + युध् + वन्

= राजयुध्वन्

प्रातिपदिक संज्ञा एवं प्रथमा एक वचन में उपधा दीर्घ और न लोप होकर

= राजयुध्वा रूप सिद्ध हुआ।

राजकृत्वा—राजानं कृतवान् (जिसने राजा बनाया हो)।

'राजन्' उपपद पूर्वक 'कृ' धातु से 'राजनि युधि कृञ्' सूत्र से 'क्वनिप्' प्रत्यय होकर तथा उपपद समास, सुप 'अम्' का लोप होकर

= राजन् + कृ + क्वनिप्

= राजन् + कृ + वन्

पित् होने के कारण 'कृ' को 'तुक्' का आगम = राजन् + कृ + त् + वन्

'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से न् का लोप होकर = राज + कृ + त् + वन्

प्रातिपदिक संज्ञा एवं प्रथमा एक वचन में उपधादीर्घ एवं 'न्' का लोप होकर

= राजकृत्वा रूप सिद्ध होता है।

सहे च ३।२।९६।।

'कर्मणि' इति निवृत्तम्। सह योधितवान्—सह-युध्वा। सह-कृत्वा।

अर्थ—यह उपपद रहते भी युध् और कृधातु से क्वनिप् प्रत्यय हो।

व्याख्या—इस सूत्र में 'कर्मणि' शब्द की निवृत्ति हो गई अब 'कर्मणि' पद की अनुवृत्ति न होगी क्योंकि सह अव्यय है।

रूप सिद्धि—

सहयुध्वा—सह योधितवान् (जिसने साथ-साथ लड़ाया हो)।

यहाँ 'सह' उपपद पूर्वक 'युध्' धातु से 'क्वनिप्' प्रत्यय होने पर

= सह + युध् + क्वनिप्

= सह + युध् + वन्

= सहयुध्वन्

प्रातिपदिक संज्ञा एवं प्रथमा एक वचन में विभक्ति कार्य होकर = सहयुध्वा रूप सिद्ध होता है।

सह कृत्वा—सह कृतवान् (जिसने साथ-साथ किया हो)।

यहाँ 'सह' उपपद पूर्वक 'कृञ्' धातु से 'सहेच' सूत्र से 'क्वनिप्' प्रत्यय होने पर

= सह + कृ + क्वनिप्

= सह + कृ + वन्

'क्वनिप्' प्रत्यय के पित् होने से कृ को तुक् आगम = सह + कृ + त् + वन्
= सहकृत्वन् बना

प्रातिपदिक संज्ञा एवं प्रथमा एक वचन में विभक्ति कार्य होकर
= सहकृत्वा रूप सिद्ध होता है।

सप्तम्यां जनेर्डः ३।२।९७।।

अर्थः—सप्तम्यन्त उपपद रहते जन् धातु से ड प्रत्यय हो।

व्याख्याः—'ड' प्रत्यय का डकार इत्संज्ञक है। डित् होने से इसके परे रहते टि का लोप होता है। केवल 'अ' शेष रहता है।

तत्पुरुषे कृति बहुलम् ६।३।१४।।

ङेरलुक्। सरिस्-जन्, सरोजम्

अर्थ—तत्पुरुष समास में कृत् प्रत्यय परे रहते ङि (सप्तमी एकवचन) का बहुल रूप से लोप नहीं होता है।

व्याख्याः—सप्तमी विभक्ति के एक वचन के प्रत्यय 'ङि' का समास करने पर 'सुपो धातु प्रातिपदिकयोः' सूत्र से प्राप्त लोप विकल्प से होता है।

रूप सिद्धि—

सरसिजम्—सरसि जातम् (सरोवर में उत्पन्न हुआ, कमल)।

यहाँ सरस् ङि उपपद पूर्वक 'जन्' धातु से भूतार्थ में
'सप्तम्यां जनेर्डः' सूत्र से 'ड' प्रत्यय होकर = सरस् + ङि + जन् + ड
= सरस् + ङि + जन् + अ
'टेः' सूत्र से टि (अन्) का लोप होकर = सरस् + ङि + ज् + अ
उपपद समास एवं विकल्प से 'ङि' के लोप का निषेध होकर = सरस् + इ + ज
= सरसिज बना
प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = सरसिजम् रूप सिद्ध होता है।

सरोजम्—सरसि जातम् (सरोवर में उत्पन्न हुआ)।

यहाँ सरस् ङि उपपद होने पर 'जन्' धातु से भूतार्थ में
'सप्तभ्यां जनेर्डः' सूत्र से 'ड' प्रत्यय होकर = सरस् + ङि + जन् + ड
= सरस् + ङि + जन् + अ
'टेः' सूत्र से टि (अन्) का लोप होकर = सरस् + ङि + ज् + अ
उपपद समास एवं 'ङि' का विकल्प से लोप होकर = सरस् + ज
सकार को रू एवं रू को उकार होने से गुण 'ओ' होकर = सर ओ + ज
प्रातिपदिक संज्ञा एवं नपु. प्र. एक. व. में = सरोजम् रूप सिद्ध होता है।

उपसर्गे च संज्ञायाम् ३।२।९९।।

प्रजा स्यात् सन्ततौ जने

अर्थ—उपसर्ग उपपद रहते 'जन्' धातु से 'ड' प्रत्यय हो संज्ञा में।

रूप सिद्धि—

प्रजा—प्रकर्षेण जाता (सन्तति)।

'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'जन्' धातु से 'उपसर्गे च संज्ञायाम्' सूत्र से

'ड' प्रत्यय प्राप्त हुआ = प्र + जन् + ड

= प्र + जन् + अ

'टेः' सूत्र से टि (अन्) का लोप होकर = प्र + ज + अ

स्त्रीत्व-विवक्षा में 'टाप्' प्रत्यय होकर = प्र + ज + आ

प्रथमा एक वचन में विभक्ति कार्य होकर = प्रजा रूप सिद्ध होता है।

क्त-क्तवत् निष्ठा १।१।२६।।

एतौ निष्ठा संज्ञौ स्तः।

अर्थ—'क्त' और 'क्तवतु' प्रत्ययों की निष्ठा संज्ञा होती है।

निष्ठा : ३।२।१०२।।

भूतार्थवृत्तर्धातोर्निष्ठा स्यात्। तत्र तयोरेव इति भावकर्मणोः क्तः। कर्तरि कृद्। इति कर्तरि क्तवतुः। उकावितौ। स्नातं मया। स्तुतस्त्वया विष्णुः। विश्वं कृतवान् विष्णुः।

अर्थ—भूतकाल में वर्तमान धातु से निष्ठा (क्त, क्तवतु) प्रत्यय हो।

व्याख्या—'तयोरेव.....' सूत्र से क्त प्रत्यय भाव और कर्म में होते हैं और 'कर्तरि कृत्' से क्तवतु प्रत्यय कर्ता में होते हैं। इसलिए क्त प्रत्यान्त क्रिया के कर्ता में तृतीया तथा क्तवतु अन्त वाली क्रिया के कर्ता से प्रथमा होती है। क्त प्रत्ययान्त कर्म से प्रथमा एवं क्तवतु अन्त के कर्म द्वितीया में होते हैं।

उकावितावविति—उकार एवं ककार इत्संज्ञक हैं। क्त का त एवं क्तवतु का 'तवत्' शेष रहता है। धातु से विहित होने से तथा तिङ् शित् से भिन्न होने के कारण आर्धधातुक संज्ञा होती है। ये दोनों प्रत्यय वलादि हैं। अतः सेट् धातु के आगे इनको इट् होता है।

रूप सिद्धि—

स्नातं मया—मैंने स्नान कर लिया।

यहाँ 'स्ना' धातु से भाव में

'क्तक्तवतु निष्ठा' सूत्र से 'क्त' होकर = स्ना + क्त

= स्ना + त

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = स्नातम् रूप सिद्ध होता है।

टिप्पणी—यह भाववाच्य में है; अतः कर्ता 'मया' को तृतीया विभक्ति में रखा गया है। क्योंकि भाव एवं कर्म वाच्य में कर्ता के अनुक्त होने से उसमें तृतीया। विभक्ति होती है।

स्तुतस्त्वया विष्णु—तुमने विष्णु की स्तुति की।

यहाँ 'स्तु' धातु से कर्म में निष्ठा प्रत्यय 'क्त' के कित् होने से गुण और धातु के अनिट् होने से इट् नहीं हुआ। अतः प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथम एक वचन में स्तुतः रूप बना। 'विष्णुः' (कर्म) में प्रथमा विभक्ति एवं अनुक्त कर्ता में तृतीय विभक्ति है।

विश्वं कृतवान् विष्णुः—संसार को विष्णु ने बनाया।

यहाँ 'कृ' धातु से कर्ता, अर्थ में निष्ठा संज्ञक

क्तवतु प्रत्यय होकर = कृ + क्तवतु
= कृ + तवत्

कित् होने से 'क्ङिति च' से गुण का निषेध होकर = कृतवत् बना।

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = कृतवान् रूप सिद्ध होता है।

टिप्पणीः—कर्ता में क्तवतु हुआ है इसलिए कर्ता के उक्त होने से 'विष्णुः' में प्रथमा और 'विश्वम्' कर्म से अनुक्त होने के कारण द्वितीय विभक्ति है।

र-दाभ्यां निष्ठा-तो नः पूर्वस्य च दः ८।२।४२।।

रदाभ्यां परस्य निष्ठा-तस्य नः स्यात्, निष्ठाऽपेक्षया पूर्वस्य धातोर्दम्य च। शॄ हिंसायाम्, ॠत् इत्, रपरः, णत्वम्-शीर्णः। भिन्नः। छिन्नः।

अर्थ—रेफ और दकार से पर निष्ठा तकार को नकार आदेश होता है तथा निष्ठा की अपेक्षा पूर्व धातु के दकार को भी।

रूप सिद्धि—

शीर्णः—नष्ट हुआ

'शॄ' धातु से कर्म में 'क्त' प्रत्यय होकर = शॄ + क्त
= शॄ + त

'ॠत् इद्धातोः' सूत्र से ॠ को इर् आदेश = शिर् + त

'हलि च' सूत्र से इकार को दीर्घ = शीर् + त

रेफ से परे 'त' को न होकर = शीर् + न

'न' को ण होकर प्रातिपदिक = शीर्ण बना

विभक्ति कार्य होकर प्रथमा एक वचन में = शीर्णः रूप सिद्ध होता है।

भिन्नः—फाड़ा हुआ।

'भिद्' धातु से भूतकालिक 'निष्ठा' सूत्र से क्त प्रत्यय होकर भिद् + क्त हुआ। दकार से परे निष्ठा के तकार को तथा निष्ठा के पूर्व धातु के दकार को भी नकार होकर प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर भिन्नः रूप सिद्ध होता है।

छिन्नः—काटा हुआ।

पूर्व कहे गए 'भिन्न' की भाँति छिन्नः भी प्रथमा एक वचन में सिद्ध होता है।

संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः ८।२।४३।। (संयोगादिः + आत् + धातोः + यण् + वतः)

निष्ठा-तस्य न स्यात्। द्राणः। ग्लानः।

अर्थ—संयोगादि, आकारान्त और यण् वाली धातु से पर निष्ठा तकार को नकार हो।

व्याख्या—जिन धातुओं के आदि में व्यञ्जनों का संयोग हो साथ ही उसमें यण् (य व र ल) में से कोई एक वर्ण हो तो ऐसी आकारान्त धातुओं से परे निष्ठा के त को न आदेश हो जाता है।

रूप सिद्धि—

द्राणः—द्रा (कुत्सित गति)।

'द्रा' धातु से भूतार्थ में 'निष्ठा' सूत्र से कर्म में 'क्त' प्रत्यय होकर
= द्रा + क्त
= द्रा + त

यह धातु संयोगादि भी है, आकारान्त भी एवं 'र' होने से
'यण्' भी है, अतः त को न होकर = द्रा + न
न को ण होकर = द्राण शब्द बना
प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = द्राणः रूप सिद्ध होता है।

ग्लानः—(दुःखी)।

'ग्लै' (ग्लानि) धातु से 'निष्ठा' सूत्र से 'क्त' प्रत्यय होकर = ग्लै + क्त
= ग्लै + त
'आदेच उपदेशेऽशिति' से 'ऐ' को 'आ' होकर = ग् ला + त
'संयोगा.....यण्वत्' से 'त' को 'न' होकर = ग् ला + न
प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर प्रथमा एक वचन में
= ग्लानः रूप सिद्ध होता है।

ल्वादिभ्यः ८।२।४४।।

(लूञ् + आदिभ्यः)।

एक विंशतेलूञादिभ्यः प्राग्वत्। लूनः। ज्या धातुः, 'ग्रहिज्या' इति संप्रसारणम्।

अर्थ—क्र्यादि गण् की लूञ् आदि इक्कीस धातुओं से पर निष्ठा तकार को नकार हो।

रूप सिद्धि—

लूनः—

'लूञ्' धातु से 'निष्ठा' सूत्र से क्त प्रत्यय होकर = लू + क्त
= लू + त
'ल्वादिभ्यः' सूत्र से त को न होकर = लू + न
प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर प्रथमा एक वचन में = लूनः रूप सिद्ध होता है।

हलः ६।४।२।।

अङ्गावयवाद्धलः परं यत्सम्प्रसारणं तदन्तस्य दीर्घः स्यात्। जीनः।

अर्थ—अंग के अवयव हल् (व्यञ्जन) से परे सम्प्रसारण को दीर्घ हो जाता है।

रूप सिद्धि—

जीनः—(जीर्ण हुआ)।

'ज्या' धातु से 'निष्ठा' सूत्र से क्त प्रत्यय होकर = ज्या + क्त
= ज्या + त

'ग्रहिज्या......क्ङिति' सूत्र से क्त प्रत्यय के कित् होने से
'य' को सम्प्रसारण 'इ' होकर = ज् + इ + आ + त

'सम्प्रसारणाच्च' सूत्र से आ को पूर्व रूप होकर = ज् + इ + त

'ल्वादिभ्यः' सूत्र से त को न होकर = ज् + इ + न

'हलः' सूत्र से 'इ' को दीर्घ ई होकर = ज् + ई + न = जीन बना।

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = जीनः रूप सिद्ध होता है।

ओदितश्च ८।२।४५।। (ओदित : + च)

भुजो भुग्नः। टुओश्वि–उच्छूनः

अर्थ—ओदित धातुओं से परे निष्ठा के 'त' को 'न' आदेश हो। ओदित धातुओं से तात्पर्य ऐसी धातुओं से है जिन में ओ की इत् संज्ञा हो।

रूप सिद्धि—

भुग्नः—(टेढ़ा)

यहाँ 'भुज्' धातु से 'निष्ठा' सूत्र के द्वारा क्त प्रत्यय होकर = भुज् + क्त
= भुज् + त

'ओदितश्च' सूत्र से 'त' को 'न' होकर = भुज् + न

'चोः कु' से ज् को ग् होकर = भुग् + न = भुग्न बना।

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर प्र० ए० व० में = भुग्नः रूप सिद्ध होता है।

उच्छूनः—(सूजा हुआ)।

यहाँ 'उत्' उपसर्ग पूर्वक 'श्वि' धातु से 'निष्ठा' से क्त प्रत्यय होकर
= उत् + श्वि + क्त
= उत् + श्वि + त

'ओदितश्च' सूत्र से 'त' को 'न' होकर = उत् + श्वि + न

'श्वि' धातु यजादि धातुओं में होने से व् को सम्प्रसारण
= उत् + श् + उ + इ + न

'सम्प्रसारणाच्च' से पूर्व रूप होकर = उत् + श् + उ + न

'हलः' से उ को दीर्घ ऊ होकर = उत् + श् + ऊ + न

'श्वीदितो निष्ठायाम्' से इट् का निषेध = उत् + श् + ऊ + न

श्चुत्व सन्धि से त् को च् और श को छ होकर = उच् + छ + ऊ + न

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर प्रथमा एक वचन में = उच्छूनः रूप सिद्ध होता है।

शुषः कः ८।२।५१।।

निष्ठा तस्य कः। शुष्कः।

अर्थ—शुष् धातु से पर निष्ठा तकार को ककार होता है।

रूप सिद्धि—

शुष्कः—(सूखा)।

'शुष्' धातु से 'निष्ठा' सूत्र से 'क्त' प्रत्यय होकर = शुष् + क्त

= शुष् + त

'शुषः कः' सूत्र से 'त' को 'क' होकर = शुष् + क = शुष्क बना।

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर प्रथमा एक वचन में = शुष्कः रूप सिद्ध होता है।

पचो वः ८।२।५२।।

पक्वः। क्षै हर्षक्षये।

अर्थ—पच् धातु से परे निष्ठा तकार को वकार आदेश होता है।

रूप सिद्धि—

पक्वः—(पका हुआ)।

यहाँ 'पच्' धातु से 'निष्ठा' सूत्र से क्त प्रत्यय होकर = पच् + क्त

= पच् + त

'पचो वः' सूत्र से 'त' को 'व' होकर = पच् + व

'चोः कुः' सूत्र से 'च' को 'क्' होकर = पक् + व = पक्व बना।

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = पक्वः रूप सिद्ध होता है।

क्षायो मः ८।२।५३।।

क्षामः।

अर्थ—क्षै धातु से परे निष्ठा के तकार को मकार आदेश हो।

रूप सिद्धि—

क्षामः—(क्षीण होना)।

यहाँ 'क्षै' धातु से 'निष्ठा' सूत्र से क्त प्रत्यय होकर = क्षै + क्त

= क्षै + त

'क्षयो मः' सूत्र से 'त' को 'म' होकर = क्षै + म

'आदेच् उपदेशेऽशिति से 'ऐ' को आकार होकर = क्ष् आ + म = क्षाम बना।

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = क्षामः रूप सिद्ध होता है।

निष्ठायां सेटि ६।४।५२।।

णेर्लोपः। भावितः, भावितवान्। दृह हिंसायाम्।

अर्थ—सेट् निष्ठा परे रहते 'णि' का लोप हो।

रूप सिद्धि—

भावितः—

यहाँ णिजन्त (प्रेरणार्थक) 'भू' धातु (भावि) से 'निष्ठा' सूत्र के द्वारा

'क्त' प्रत्यय होकर = भावि + क्त

= भावि + त

'आर्धधातुक' प्रत्यय होने से 'इट्' का आगम = भावि + इ + त

सेट् (इट् युक्त) 'क्त' प्रत्यय परे होने पर

'निष्ठायां सेटि' सूत्र से 'णि' का लोप होकर = भाव् + इ + त = भावित

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर प्रथमा एक वचन में

= भावितः रूप सिद्ध होता है।

भावितवान्

उपर्युक्त भावितः की तरह 'भावि' से 'तवत्' प्रत्यय होकर इट् का आगम, णि का लोप होकर भाव् + इ + तवत् = भावितवत् शब्द बना। 'भावितवत्' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर 'भावितवान्' रूप की सिद्धि होती है।

दृढः स्थूल-बलयोः ७।२।२०।।

स्थूले बलवति च निपात्यते।

अर्थ—स्थूल एवं बलवान अर्थ में 'दृढ' शब्द का निपातन हो।

व्याख्याः—दृह् (हिंसा) धातु से निष्ठा प्रत्यय 'क्त' होने पर ह कार को ढकार आदि होकर 'दृढ़' प्रातिपदिक बनता है। पूर्वोक्त सूत्र से विशेष अर्थों में इसका निपातन हो जाता है।

दृढः—(बलवान)।

'दृह' धातु से 'निष्ठा' सूत्र से 'क्त' प्रत्यय होकर = दृह् + क्त

= दृह् + त

निपातन से 'इट्' का अभाव तथा 'हो ढः' से ह को ढ् होकर = दृढ् + त

'झष.....' से त को ध होकर = दृढ् + ध

ष्टुत्व से ध को ढ होकर = दृढ् + ढ

'ढोढे लोपः' से पूर्व 'ढ्' होकर = दृ + ढ् = दृढ

इसकी प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = दृढः शब्द सिद्ध होता है।

दधातेर्हि : ७।४।४२।।

तादौ किति। हितम्।

अर्थ— : 'धा' धातु को 'हि' आदेश हो, तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते।

रूप सिद्धि—

हितम्—(धारण किया हुआ)

'धा' धातु से 'निष्ठा' सूत्र से 'क्त' प्रत्यय होकर = धा + क्त

= धा + त

'दधातेर्हि' सूत्र से 'धा' को 'हि' होकर = हि + त = हित बना।

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर नपु० प्रथमा एक वचन में = हित: शब्द सिद्ध होता है।

दो दद् धो: ७।४।४६।।

घु संज्ञकस्य 'दा' इत्यस्य 'दध्' स्यात् तादौ किति। चर्त्वम्-दत्त:।

अर्थ—'घु' संज्ञक दो धातु को 'दद्' (दध्) आदेश हो, तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते।

रूप सिद्धि—

दत्त:—(दिया हुआ)।

'दा' धातु से 'निष्ठा' सूत्र से क्त प्रत्यय होकर = दा + क्त

= दा + त

'दो दद्धो:' से तकारादि कित्–क्त प्रत्यय होकर = दद् + त

'द' को त् (चर्त्व) हो कर = दत् + त = दत्त

प्रादिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = दत्त:रूप सिद्ध होता है।

लिट: कानच् वा ३।२।१०६।।

अर्थ—लिट् को कानच् विकल्प से हो। 'कानच्' में ककार एवं चकार इत्संज्ञक हैं। केवल आन शेष रहता है।

क्वसुश्च ३।२।१०७।।

लिट: कानच् क्वसुश्च ना स्त:। तङानावात्मनेपदम्। चक्राण:।

अर्थ:—लिट् को 'क्वसु' भी आदेश विकल्प से होता है। 'क्वसु' के ककार एवं उकार की इत्संज्ञा होती है। 'वस्' शेष रहता है। 'कानच्' को आत्मनेपद संज्ञा होती है। इसलिए आत्मनेपदीय धातुओं से ही यह होता है।

रूप सिद्धि—

चक्राण:—(करता हुआ)।

'कृ' धातु से परे 'लिट: कानजवा' से लिट् के स्थान पर

विकल्प से 'कानच्' प्रत्यय होकर = कृ + कानच्

= कृ + आन

'लट्' लकार के परे होने से 'लिटिधातो......' से कृ को द्वित्व होकर
= कृ + कृ + आन

कृ की अभ्यास संज्ञा एवं ऋ को रपर होकर = कर् + कृ + आन

'हलादि शेष:' से आदि हल् वर्ण शेष रहकर = क + कृ + आन

'कुहोश्चु:' से क को च, यण् सन्धि तथा न को ण होकर = च + क् र् + आ ण

प्रादिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर प्र० ए० व० में = चक्राण: सिद्ध हुआ।

म्वोश्च ८।२।६५।। (म् + व: + च)

मान्तस्य धातोर्नत्वं स्यात् म्वो: परत:। जगन्वान्।

अर्थ—मकारान्त धातु को नकार आदेश हो, मकार और वकार परे रहते।

रूप सिद्धि—

जगन्वान्—(गया हुआ)।

'गम्' धातु से परे लिट् लकार को 'क्वसुश्च' सूत्र से (विकल्प से)

'क्वसु' प्रत्यय होकर = गम् + क्वसु
= गम् + वस्

'लिटि धातो.....' से धातु को द्वित्व होकर = गम् + गम् + वस्

'गम्' की अभ्यास संज्ञा, आदि वर्ण (हल्) शेष रहने पर
= ग + गम् + वस्

'ग' को 'ज' एवं 'म्वोश्च' से म् को न् होकर = ज + गन् + वस्

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = जगन्वान् रूप सिद्ध हुआ।

लट: शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ३।२।१२४।।

अप्रथमान्तेन समानाधिकरणे लट एतौ वा स्त:। शबादि। पचन्तं चैत्रं पश्य।

अर्थ:—प्रथमान्त से भिन्न समानाधिकरण में लट् के स्थान पर शतृ और शानच् प्रत्यय होते हैं।

व्याख्या:—शतृ का 'अत्' एवं शानच् का 'आन' शेष बचता है। अन्य अनुबन्धों की इत्संज्ञा होती है। ये दोनों प्रत्यय सदैव वर्तमान काल में होते हैं। 'शतृ' प्रत्यय परस्मैपदी धातुओं के साथ तथा 'शानच' प्रत्यय आत्मनेपदी धातुओं के साथ होता है। शतृ के साथ स्त्रीलिंग में ङीप् प्रत्यय होकर दीर्घ ईकारान्त शब्द बनते हैं तथा शानच् के साथ स्त्रीलिङ्ग में टाप् होकर आकारान्त हो जाते हैं।

शबादि—शतृ और शानच् दोनों शित् हैं, अत: धातुओं से विहित होने के कारण ये सार्वधातुक हैं। इसलिए इनके परे रहते यथा प्राप्त 'शप्' आदि विकरण होते हैं। शप् का 'अ' शेष रहता है।

रूप सिद्धि—

पचन्तं चैत्रं पश्य—(पकाते हुए चैत्र को देखो)।

'पच्' धातु से 'लट्' के स्थान पर 'लट्: शतृ शानच्......'।

सूत्र से ('शत्' प्रत्यय होकर = पच् + शत्

= पच् + अत्

'शित्' होने से सार्वधातुक संज्ञा एवं 'कर्तरिशप्' से 'शप्'

का आगम होकर = पच् + अ + अत्

'अतो गुणो' से 'अ' पर रूप होकर = पच् + अत् = पचत्

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर द्वितीया एक वचन में = पचन्तम् रूप सिद्ध होता है।

आने मुक् ७।२।८२।।

अदन्ताङ्गस्य 'मुग्' आगमः स्याद् आने परे। पचमानं चैत्रं पश्य। 'लट्' इत्यनुवर्तमाने पुनर्लड्ग्रहणात् प्रथमा सामानाधिकरण्ये क्वचित्। सन् द्विजः।

अर्थ—अदन्त अंग को मुक् आगम हो 'आन' परे रहते हैं। मुक् का मकार शेष रहता है, उक् इत्संज्ञक है।

रूप सिद्धि—

पचमानं चैत्रं पश्य—(पकाते हुए चैत्र को देखो)।

'पच्' धातु से परे लट् के स्थान पर 'शानच्' प्रत्यय होकर

= पच् + शानच्

= पच् + आन

'कर्तृरि शप्' से शप् (अ) का आगम होकर = पच् + अ + आन

आन परे होने पर अदन्त अङ्ग को 'आनेमुक्' से 'मुक्' (म्) होकर

= पच् + अ + मान

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर द्वि० ए० व० में = पचमानम् रूप सिद्ध होता है।

लडिति—यहाँ 'लट्' इसकी 'वर्तमाने लट्' से अनुवृत्ति होने पर भी जो लट् का ग्रहण किया गया है। वह इस ओर इंगित करता है कि प्रथमान्त के साथ सामानाधिकरण होने पर भी कहीं कहीं शतृ और शानच् प्रत्यय आते हैं।

रूप सिद्धि—

सन् द्विजः—(विद्यमान ब्राह्मण)।

यहाँ 'अक्ष्' धातु से प्रथमान्त के साथ सामानाधिकरण होने पर भी लट् के स्थान पर 'शत्' हुआ। तब 'श्नसोरल्लोपः' सूत्र से आकार का लोप होकर 'सत्' प्रातिपदिक बना। प्र० ए० व० में नुम् आगम हल्यअङयादि लोप, संयोगान्त लोप होकर 'सन्' रूप सिद्ध होता है। यह प्रथमान्त सामानाधिकरण का उदाहरण है। ऐसे प्रयोगों की प्रचुरता है।

विदेः शतुर्वसुः ७।१।३६।।

वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा। विदन्। विद्वान्।

अर्थ—'विद्' धातु से परे शतृ के स्थान पर 'वसु' आदेश हो विकल्प से। वसु में वस् शेष रहता है। उकार का लोप हो जाता है। उगित होने से नुम् होता है।

रूप सिद्धि—

विद्वान्—(जानता हुआ)/विदन् (जानता हुआ)।

ज्ञानार्थक 'विद्' धातु से लट् के स्थान पर 'लट्ः शतृशानच्.....'

सूत्र से शतृ प्रत्यय होकर = विद् + शतृ

'विदेः शतुर्वसु' से शतृ को विकल्प से वसु होकर = विद् + वसु

= विद् + वस् = विद्वस्।

प्रातिपदिक संज्ञा, प्र. ए. व. में उगिद होने से

नुम्, सान्त संयोग होने से उपधा दीर्घ होकर = विद्वान् रूप सिद्ध होता है।

अभाव पक्ष में 'विदत्' शब्द बनता है। इसकी प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभवित कार्य होकर 'विदन्' रूप सिद्ध होता है।

तौ सत् ३।२।१२७।।

तौ शतृशानचौ सत् संज्ञौ स्तः

अर्थ—उन शतृ एवं शानच् की सत् संज्ञा हो।

लृट्ः सद् वा ३।३।१४।।

व्यवस्थित विभाषेयम्। तेनाऽप्रथमा सामानाधिकरण्ये प्रत्ययोत्तरपदयोः संबोधने लक्षण हेत्वोश्च नित्यम्। करिष्यन्तं करष्यिमाणं पश्च।

अर्थः—लृट् के स्थान में सत् प्रत्यय विकल्प से हों।

व्याख्याः—यह व्यवस्थित-विभाषा है अर्थात् यह कार्य किसी स्थान में होता है और किसी में नहीं, यही व्यवस्था है।

तेनेति—व्यवस्थित-विभाषा के कारण अप्रथमा सामानाधिकरण में प्रत्यय और उत्तर पद परे रहते, संबोधन में और लक्षण तथा हेतु अर्थ नित्य आदेश होते हैं।

करिष्यन्तं करष्यिमाणं पश्यच—(आगे करने वाले को देखो)।

'कृ' धातु से 'लृटः सद्वा' से विकल्प से 'शतृ' व 'शानच्' प्रत्यय प्राप्त होते हैं।

शतृ पक्ष में = कृ + शतृ

= कृ + अत्

'स्यतासी लृ लृटोः' से 'स्य' का आगम = कृ + स्य + अत्

'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' से इट् का आगम = कृ + इ + स्य + अत्

'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से ऋ को गुण होकर = क् अर् + इ + स्य + अत्

स् को ष् अतो गुण से अ को पर रूप होकर = कर् + इ + ष्य + अत्

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर द्वि. ए. व. में = करिष्यन्तम् रूप सिद्ध हुआ।

करिष्यमाणं—

'कृ' धातु से 'शानच्' प्रत्यय होकर = कृ + आन

मुमागम होकर = कृ + मान

स्य का आगम होकर = कृ + स्य + मान

'इट्' का आगम होकर = कृ + इ + स्य + मान

ऋ को गुण होकर = कर् + इ + स्य + मान

स् को ष् एवं न् को ण् होकर = कर् + इ + ष्य + माण

= करिष्यमाण शब्द बना

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = करिष्यमाणम् रूप सिद्ध हुआ।

आ क्वेस्तच्छील-तद्धर्म-तत्साधुकारिषु ३।२।१३४।।

क्विपमभिव्याप्य वक्ष्यमाणाः प्रत्ययाः, तच्छीलादिषु कर्तृषु बोध्याः।

अर्थः—क्विप् तक कहे जाने वाले प्रत्यय तच्छील, तद्धर्म और तत्साधुकारी कर्ता अर्थ में होते हैं, यह समझना चाहिए।

व्याख्या—'भ्राजभास......क्विप्' तथा 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते से विहित क्विप् प्रत्यय पर्यन्त एवं यहाँ से आगे कहे गए प्रत्यय निम्नलिखित तीन अर्थों में होते हैं—(१) तच्छील अर्थात् उस आदत वाला, (२) तद्धर्म अर्थात् उस धर्म (कर्तव्य) मान कर करने वाला, (३) तत्साधुकारी अर्थात् उसे भलीभाँति करने वाला।

तृन् ३।२।१३५।।

कर्ता कटान्।

अर्थ—तच्छील आदि कर्त्ता के अर्थ में धातु से 'तृन्' प्रत्यय होता है।

रूप सिद्धि—

कर्ता कटान्—(चटाई बनाने के स्वभाव वाला, चटाई बनाना है धर्म जिसका, या अच्छी चटाइयाँ बनाने वाला)।

यहाँ 'कृ' धातु से 'तृन्' सूत्र से 'तृन्' प्रत्यय होकर = कृ + तृन्

= कृ + तृ

ऋ को गुण 'अर्' होकर = कर् + तृ = कर्तृ

इसकी प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य प्र. ए. व. में होकर = कर्ता रूप सिद्ध होता है।

जल्प-भिक्ष-कुट्ट-लुण्ट-वृङः षाकन् ३।२।१५५।।

अर्थ—जल्प, भिक्ष, कुट्ट, लुण्ट, वृङ् इन धातुओं से षाकन् प्रत्यय हो, तच्छील आदि कर्ता अर्थ में।

षः प्रत्ययस्य १।३।६।।

प्रत्ययस्याऽऽदिः ष इत्संज्ञः स्यात्। जल्पाकः। भिक्षाकः। कुट्टाकः। लुण्टाकः। वराकः, वराकी।

अर्थ—प्रत्यय के आदि षकार की इत्संज्ञा हो। षाकन् में 'आक' शेष रहता है।

रूप सिद्धि—

जल्पाकः—(बोलने के स्वभाव वाला)।

यहाँ 'जल्प्' धातु से 'जल्प भिक्ष....षाकन्' सूत्र से

कर्ता अर्थ में षाकन् प्रत्यय होकर = जल्प् + षाकन्

'षः प्रत्ययस्य' से ष् की इत्संज्ञा होकर = जल्प् + आक

= जल्प् + आक

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = जल्पाकः रूप सिद्ध हुआ

इसी प्रकार भिक्षाकः (भीख माँगने के स्वभाव वाला, भिखारी) कुट्टाक : (कूटने के स्वभाव वाला), लुण्टाकः (लूटने के स्वभाव वाला, लुटेरा) वराकः (बेचारा)—इन शब्दों की सिद्धि होती है।

वराकी—'वराक' शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होकर वराकी रूप सिद्ध होता है। 'वराकी' शब्द से प्र. ए. व. में सु प्रत्यय होकर तथा 'हल्ङ्या....' सूत्र से सु का लोप होकर वराकी रूप बनता है।

सनाशंसभिक्षउः ३।२।१६८।।

(सन् + आ + शंस् + भिक्षउः)

चिकीर्षुः। आशंसुः। भिक्षुः।

अर्थ—सन् प्रत्ययान्त धातुओं, आङ् उपसर्गपूर्वक शंस् और भिक्ष् धातुओं से 'उ' प्रत्यय हो कर्ता अर्थ में।

रूप सिद्धि—

चिकीर्षुः—(करने की इच्छा रखने वाला)

यहाँ 'कृ' धातु से सन् प्रत्यय होकर 'चिकीर्ष' रूप बनता है। अतः सन्नन्त 'चिकीर्ष' धातु से 'सनाशंस भिक्ष उः' सूत्र से

उ प्रत्यय होकर = चिकीर्ष + उ

'अतोलोपः' से अ का लोप = चिकीर्ष् + उ

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = चिकीर्षुः रूप सिद्ध हुआ।

आशंसुः—(आशा रखने वाला)।

'आङ्' उपसर्ग पूर्वक 'शंस्' धातु से 'उ' प्रत्यय होकर आ + शंस् + उ = आशंसु रूप बना। इसकी प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर प्रथमा एक वचन में आशंसुः रूप सिद्ध होता है।

भिक्षुः—(माँगने वाला, भिखारी)।

यहाँ भिक्ष् धातु से 'सनाशंसभिक्ष उः' सूत्र से 'उ' प्रत्यय होकर भिक्ष् + उ = 'भिक्षु' शब्द बना। प्रातिपदिक संज्ञा एवं प्रथमा एक वचन में भिक्षुः रूप सिद्ध होता है।

भ्राज-भास-धुर्वि-द्युतोर्जि-पॄ-जु-ग्रावस्तुवः क्विप् ३।२।१७७।।

विभ्राट्। भाः।

अर्थ—भ्राज् भास् धुर्वि, द्युत्, ऊर्ज्, पॄ, जु तथा 'ग्राव' पूर्वक 'स्तु' धातु से तच्छील आदि कर्ता के अर्थ में 'क्विप्' प्रत्यय का विधान हो। 'क्विप' का सर्वापहार लोप होता है।

रूप सिद्धि—

विभ्राट्—(विशेष चमकने वाला)।

'वि' उपसर्ग पूर्वक 'भ्राज्' धातु से 'भ्राज भास.....क्विप्' सूत्र से

'क्विप्' प्रत्यय होकर = वि + भ्राज्+ क्विप्

'क्विप्' प्रत्यय का सर्वापहार लोप होकर = वि + भ्राज् = विभ्राज्

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर प्रथमा एक वचन में जकार को षकार उसे जश् 'ड' विकल्प से चर् 'ट' होकर = विभ्राट् रूप सिद्ध हुआ।

भाः—(दीप्ति, चमक)।

'भास्' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय होकर = भास् + क्विप्

'क्विप्' का सर्वापहार लोप होकर = भास्

प्रातिपादिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर प्र० ए० व० में = भास् + सु

सु का हल्ङ्यादि लोप, सकार को रु और रु को विसर्ग = भाः शब्द सिद्ध हुआ।

रा (त्) ल् लोपः ६।४।२१।।

रेफात् च्छ्वोः लोपः क्वौ झलादौ क्ङिति। धूः विद्युत्। ऊर्क्। पूः। दृशिग्रहणस्यापकर्षाद जवतेर्दीर्घः। जूः। ग्रावस्तुत्।

अर्थ—रेफ् से परे च्छ और व का लोप हो, क्वि और झलादि कित् ङित् परे रहते।

रूप सिद्धि—

धूः (धुरी)—'धुर्व्' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय होकर = धुर्व् + क्विप्

'क्विप्' का सर्वापहार लोप होकर = धुर्व्

'राल्लोपः' सूत्र से रेफ् से परे धातु के 'व्' का लोप होकर = धुर्

धुर् की प्रातिपदिक संज्ञा, प्र० ए० व० में सु का लोप,

'वोरुपधायाः' से उपधा = धुर् + सु (लोप)

उकार को दीर्घ और रेफ् को विसर्ग होकर = धूः रूप सिद्ध हुआ।

विद्युत्—(बिजली)।

'वि' उपसर्ग पूर्वक 'द्युत्' धातु से 'क्विप्' होकर = वि + द्युत् + क्विप्
'क्विप्' का सर्वापहार लोप होकर = वि + द्युत् = विद्युत्
प्रातिपादिक संज्ञा, सु का हल्ङ्यादि लोप होकर = विद्युत् + सु (लोप)
= विद्युत् रूप सिद्ध हुआ।

ऊर्क् (बलवान)।

'ऊर्ज्' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय होकर = ऊर्ज् + क्विप्
'क्विप्' प्रत्यय का सर्वापहार लोप होकर = ऊर्ज्
प्रातिपदिक संज्ञा एवं प्र. ए. व. में हल्ङ्यादि सु लोप = ऊर्ज् + सु (लोप)
'चोः कुः' से ज् को कुत्व होकर = ऊर्क् रूप बना

पूः (शहर)।

'पृ' (पालन करना) धातु से 'क्विप्' प्रत्यय होकर = पृ + क्विप्
'क्विप्' प्रत्यय का सर्वापहार लोप होकर = पृ
'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' से रपर सहित 'उर्' होकर = प् उर् = पुर्
प्रातिपदिक संज्ञा एवं प्र. एक. व. में = पुरः रूप सिद्ध हुआ।

जूः (वेगवान्)।

'जु' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय होकर = जु + क्विप्
'क्विप्' प्रत्यय का सर्वापहार लोप होकर = जु
'दृशिग्रंहण....' से दीर्घ होकर = जू
'जू' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = जूः रूप सिद्ध होता है।

ग्रावस्तुत्—(मूर्तिपूजक, पत्थर के गुण गाने वाला)।

'ग्राव' पूर्वक 'स्तु' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय होकर = ग्राव + स्तु + क्विप्
'क्विप्' प्रत्यय का सर्वापहार लोप होकर = ग्राव + स्तु
'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' से' स्तु के आगे तुक् (त्) का आगम = ग्राव + स्तु + त्
प्रातिपदिक संज्ञा एवं प्र. ए. व. में = ग्रावस्तुत् रूप सिद्ध हुआ।

(वा) क्वि (प्) ब् वचि-प्रच्छ्यायत-स्तु-कट प्रु-जु-श्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणं च। 'वक्ति' इति वाक्।

अर्थ—वच्, प्रच्छ, आयत पूर्वक स्तु, कट पूर्वक प्रु जु और श्रि धातु से 'क्विप्' प्रत्यय हो, दीर्घ हो और संप्रसारण का अभाव हो।

व्याख्या—दीर्घ सब में होता है। सम्प्रसारण का निषेध केवल पृच्छ में है।

रूप सिद्धि—

वाक्—(वाणी)।

'वच्' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय होकर = वच् + क्विप्

क्विप् का सर्वापहार लोप होकर = वच्

अ को दीर्घ होकर = वाच्

प्रातिपदिकसंज्ञा एवं प्र. ए. व. में 'चोः कु' से च को कुत्व होकर = वाक् रूप सिद्ध हुआ।

च्छ-वोः शूड् अनुनासिकेच ६।४।१९।।

सतुक्कस्य छस्य वस्य च क्रमात् 'श' 'ऊठ्' इत्यादेशौ स्तोऽनुनासिके क्वौ झलादौ च क्ङिति। पृच्छतीति-प्राट्। आयतं स्तौति-आयतस्तूः। प्रवते-कटप्रूः। जूः-उक्तः। श्रयति हरिम्-श्रीः।

अर्थ—'तुक्' सहित छकार और वकार को क्रमशः श और ऊठ् आदेश हों, अनुनासिक क्विप् और झलादि कित् ङित् परे रहते।

रूप सिद्धि—

प्राट्—(प्रश्न करने वाला)।

'प्रच्छ्' धातु से वार्तिक 'क्विब्वचि.....च' से 'क्विप्' प्रत्यय होकर
= प्रच्छ् + क्विप्

'क्विप्' प्रत्यय का सर्वापहार लोप होकर = प्रच्छ्

दीर्घ एवं सम्प्रसारण का अभाव = प्राच्छ्

'च्छ्वो शूडनुनासिके च' से च्छ को श होकर = प्राश्

प्रातिपदिक संज्ञा एवं 'श' को 'ष', जश्त्व दकार और चर् (ट्)
होकर प्र. ए. व. में = प्राट् रूप सिद्ध हुआ।

आयतस्तूः—आयत स्तौति (विस्तृत गुण गाने वाला)

'आयत' पूर्वक 'स्तु' धातु से वार्तिक द्वारा 'क्विप्' होकर = आयत + स्तु + क्विप्

'क्विप्' प्रत्यय का सर्वापहार लोप होकर = आयत + स्तु

दीर्घ ऊकारान्त होकर = आयत + स्तू

प्रातिपदिक संज्ञा एवं प्र. ए. व. में सु को रुत्व विसर्ग होकर = आयतस्तूः रूप सिद्ध हुआ।

कट प्रूः—कटं प्रवते (चटाई बुनने वाला)।

यहाँ 'कट्' पूर्वक 'प्रु' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय होकर = कट + प्रु + क्विप्

'क्विप्' प्रत्यय का सर्वापहार लोप होकर = कट + प्रु

दीर्घ ऊकारान्त हो कर = कट + प्रू

प्रादिपदिक संज्ञा एवं प्रथमा एक वचन में सु को रूत्व विसर्ग होकर = कटप्रू : शब्द सिद्ध हुआ।

श्रीः—श्रयति हरिम् (हरि का आश्रय लेने वाली, लक्ष्मी)।

यहाँ 'श्रि' धातु से वार्तिक द्वारा 'क्विप्' प्रत्यय होकर = श्रि + क्विप्

'क्विप्' प्रत्यय का सर्वापहार लोप होकर = श्रि

दीर्घ ई होकर स्त्री लिङ्ग में = श्री

श्री की प्रातिपदिक संज्ञा एवं प्र. ए. व. में सु को रुत्व विसर्ग होकर = श्रीः रूप सिद्ध हुआ।

दाम्नी-शस्-यु-युज्-स्तु-तुद-सि-सिच्-मिह-पत-दश-नहः करणे ३।२।१८२।।

दाबादेः ष्ट्रन स्यात्करणेऽर्थे। दात्यनेन दात्रम्। नेत्रम्।

अर्थ—दाप् (काटना), नी (ले जाना), शस् (मारना), यु (मिलाना), युज् (जोड़ना), स्तु (स्तुति करना), तुद् (पीड़ा पहुँचाना), सि (बन्धन), सिच् (सींचना) मिह् (सींचना), पत् (गिरना), दश् (डसना) और नह् (बाँधना) धातुओं से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय हो करण अर्थ में।

ष्ट्रन् के षकार और नकार इत्संज्ञक है। षकार के लोप होने पर टकार अपने रूप तकार में बदल जाता है। 'त्र' शेष बचता है।

रूप सिद्धि—

दात्रम्—दाति अनेन (दाता, दरात)।

'दाप्' धातु से 'दाम्नी... करणे' सूत्र से ष्ट्रन् प्रत्यय होकर = दा + ष्ट्रन्

= दा + त्र = दात्र बना।

'दात्र' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं अकारान्त नपु. लि. में = दात्रम् रूप सिद्ध हुआ।

नेत्रम्—नयति अनेन (इससे विषय रूप के प्रति ले जाता है, आँख)।

'नी' धातु से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय होकर = नी + ष्ट्रन्

= नी + त्र

ई को गुण् 'ए' होकर = नेत्र बना।

प्रातिपदिक संज्ञा एवं अकारान्त नपु. लि. में = नेत्रम् रूप सिद्ध हुआ।

ति-तु-त्र-त-थ-सि-सु-सर-क-सेषु च ७।२।९।।

एषां दशानां कृत्प्रत्ययानाम् इण् न। शस्त्रम्। योत्रम्। योक्त्रम्। स्तोत्रम्। तोत्त्रम्। सेत्रम्। सेक्त्रम्। मेढ्रम्। पत्त्रम्। दंष्ट्रा। नद्ध्री।

अर्थ—ति, तु, त्र, त, थ, सि, सु, सर्, क, स—इन दस प्रत्ययों को इट् न हो।

ति-क्तिन् और क्तिच्, तु-तुन्, त्र-स्ट्रन्, त-तन्, थ-क्थन्, सि-क्सि, सु, सर-सरन्, क-कन्, स-ये प्रत्ययों के असली रूप हैं। इनमें कुछ प्रत्यय उणादि हैं। ये सब वलादि आर्धधातुक हैं। इनको इट् प्राप्त है, उसका इस सूत्र से निषेध हो गया है।

रूप सिद्धि–

शस्त्रम्–(शस्त्र या हथियार)।

'शस्' धातु से 'दाम्नीशस्.....करणे' सूत्र से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय होकर

= शस् + ष्ट्रन्

प्रत्यय के वलादि आर्धधातुक होने के कारण प्राप्त = शस् + त्र

इट् का 'तितुत्र.....य' सूत्र से निषेध होकर = शस्त्र शब्द बना

इसकी प्रातिपदिक सज्ञा एवं नपु. ए. व. में = शस्त्रम् रूप सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार अन्य शब्द सिद्ध होते हैं।

यु-योत्रम् (रस्सी), युज्-योक्त्रम् (जोत)। स्तु स्तोत्रम् (स्तुति)। तुद्-तोत्रम् (चाबुक)। सि-सेत्रम् (बन्धक, रज्जु)। सिच्-सेक्त्रम् (खींचने का पात्र)। मिह्-मेढ्रम् (लिङ्ग)। पत्-पत्त्रम् (सवारी, पत्ता)। दंश्-दंष्ट्रा (दाढ़)। नह्-नध्री (चमड़े की रस्सी)।

उपयुक्त शब्दों में 'ष्ट्रन्' प्रत्यय प्रयुक्त है।

योत्रम्–(जोत्) जोतने की रस्सी।

'यु' (मिलाना) धातु से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय होकर = यु + ष्ट्रन्

= यु + त्र

'उ' को गुण होकर = यो + त्र

'योत्र' की प्रातिपदिक संज्ञा विभक्ति कार्य होकर = योत्रम् रूप सिद्ध होता है।

योक्त्रम्–(जोत्)

'युज्' धातु से 'दाम्नी.....करणे' सूत्र से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय होकर

= युज् + ष्ट्रन्

= युज् + त्र

'उ' को गुण 'ओ' तथा ज को ग, ग को 'क' होकर = योक् + त्र

इसकी प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = 'योक्त्रम्' रूप सिद्ध होता है।

स्तोत्रम्–(स्तुति, स्तुति पाठ का संग्रह)।

'स्तु' धातु से 'दाम्नी......करणे' सूत्र से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय होकर = स्तु + ष्ट्रन्

= स्तु + त्र

'उ' को गुण 'ओ' होकर स्त्री. में = स्तो + त्र

प्रादिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = स्तोत्रम् रूप सिद्ध हुआ।

तोत्रम्–(चाबुक, आरा)।

'तुद' धातु से 'दाम्नी.......करणे' सूत्र से 'ष्ट्रन्' प्रत्यय होकर = तुद + ष्ट्रन्

= तुद + त्र

'उ' को गुण ओ तथा 'द्' को चर्त्व (त्) होकर = तोत् + त्र = तोत्त्र
प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = तोत्त्रम् शब्द सिद्ध हुआ।

सेत्रम्–(बाँधने की रस्सी)।
'सि' धातु से 'दाम्नी.....करणे' सूत्र से
'ष्ट्रन्' प्रत्यय हो कर = सि + ष्ट्रन्
= सि + त्र
'इ' को गुण 'ए' होकर = से + त्र
प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = सेत्रम् रूप सिद्ध हुआ।

सेक्त्रम्–(सींचने का पात्र)।
'सिच्' धात् से 'दाम्नी......करणे' सूत्र से
ष्ट्रन् प्रत्यय होकर = सिच् + ष्ट्रन्
= सिच् + त्र
'इ' को गुण ए तथा 'च्' को 'क्' होकर = सेक् + त्र
'सेक्त्र' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = सेक्त्रम् रूप सिद्ध हुआ।

मेढ्रम्–(मूत्रेन्द्रिय)।
'मिह्' धातु से 'दाम्नी....करणे' सूत्र से ष्ट्रन् प्रत्यय होकर = मिह् + ष्ट्रन्
= मिह् + त्र
'इ' को गुण 'ए' तथा 'होढ़' से 'ह्' को ढ् होकर = मेढ़ + त्र
'त्' को 'ध्' होकर = मेढ् + ध् + र्
'ष्टुना ष्टु :' से 'ध' को ढ् होकर = मेढ् + ढ् + र्
'ढो ढे लोपः' से पूर्व ढ् का लोप होकर = मेढ्र्
इसकी प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = मेढ्रम् रूप सिद्ध होता है।

दंष्ट्राः–(दाढ)।
'दंश्' (डसना) धातु से 'दाम्नी......करणे' सूत्र से
'ष्ट्रन्' प्रत्यय होकर = दंश् + ष्ट्रन्
= दंश् + त्र
'श्' को ष् तथा त् को ट् होकर = दंष् + ट्र = दंष्ट्र
स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् (आ) प्रत्यय होकर = दंष्ट्र + आ
अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घ होकर = दंष्ट्रा बना
'दंष्ट्रा' से प्र. ए. व. में 'सु' प्रत्यय तथा लोप होकर = दंष्ट्रा रूप सिद्ध हुआ।

नद्ध्री—(हल आदि में बाँधने की रस्सी)।

'नह्' धातु से 'दाम्नी.....करणे' सूत्र से 'ष्ट्रन् प्रत्यय होकर = नह् + ष्ट्रन्
= नह् + त्र
'नहो धः' से 'ह्' को 'ध' होकर = नध् + त्र
'झष....अधः' से त् को ध् होकर = नध् + ध् + र्
पूर्व ध् को द् होकर = न द् + ध् + र
स्त्रीत्व-विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होकर = न द् + ध् + र् + ई
'यस्येति च' से 'अ' का लोप होकर = नद्ध्री शब्द बना।

प्रातिपदिक संज्ञा एवं प्र. ए. व. में सु एवं सु का लोप होकर = नद्ध्री रूप सिद्ध होता है।

अर्ति-लू-धू-सू-खन-सह-चर इत्रः ३।२।१८४।।

अरित्रम्। लवित्रम्। धवित्रम्। सवित्रम्। खनित्रम्। सहित्रम्। चरित्रम्।

अर्थ—ऋ (जाना), लू (काटना), धू (कँपाना), सू (पैदा करना) खन् (खनना), सह् (सहना) और चर् (चलना, खाना)। इन धातुओं से इत्र प्रत्यय हो।

व्याख्या—'इत्र' प्रत्यय आर्धधातुक है। इसके परे जहाँ प्रयुक्त है; वहाँ गुण होता है। इससे बने प्रातिपदिक प्रायः नपुंसक लिङ्ग होते हैं।

रूप सिद्धि—

अरित्रम्—(नाव चलाने का डंडा)।

'ऋ' धातु से 'अर्तिलू....इत्र' सूत्र से 'इत्र' प्रत्यय होकर = ऋ + इत्र
ऋ को गुण 'अर्' होकर = अर् + इत्र

प्रातिपदिक संज्ञा एवं प्र. ए. व. में = अरित्रम् रूप सिद्ध हुआ।

लवित्रम्—(चाकू आदि)।

'लू' धातु से 'अर्ति....इत्रः' सूत्र से 'इत्र' प्रत्यय होकर = लू + इत्र
ऊ को ओ (गुण) होकर = लो + इत्र
'एचोऽयवायावः' से अवादेश होकर = पव् + इत्र

प्रातिपदिक संज्ञा एवं प्र. एकवचन में = लवित्रम् रूप सिद्ध होता है।

धुवित्रम्—(पंखा)।

'धू' धातु से 'अर्ति....इत्रः' सूत्र से 'इत्र' प्रत्यय होकर = धू + इत्र
'धू' धातु से कुटादि में होने के कारण गुण का निषेध एवं
'ऊ' को 'उवङ्' (उव्) आदेश होकर = ध् उव् + इत्र
= धुवित्र बना।

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = धुवित्रम् रूप सिद्ध होता है।

सवित्रम्—(प्रेरणा का साधन)।
'सु' धातु से 'अर्ति....इत्र' सूत्र से 'इत्र' प्रत्यय होकर= सु + इत्र
'ऊ' को गुण होकर (ओ) = सो + इत्र
'ओ' को 'एचोऽयवायावः' से अव् होकर = सव् + इत्र
प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = सवित्रम् रूप सिद्ध होता है।
खनित्रम्—(कुदाल)।
'खन्' धातु से 'अर्ति....इत्रः' से 'इत्र' प्रत्यय होकर = खन् + इत्र
प्रातिपदिक संज्ञा एवं स्वादि कार्य होकर = खनित्रम् रूप सिद्ध होता है।
सहित्रम्— (सहन करने का साधन)
'सह्' धातु से 'अर्ति.......इत्रः' सूत्र से 'इत्र' प्रत्यय होकर = सह् + इत्र
प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = सहित्रम् रूप सिद्ध होता है।
चरित्रम्—(चरित्र)।
'चर्' धातु से 'अर्ति......इत्र' सूत्र से 'इत्र' प्रत्यय होकर = चर् + इत्र
'चरित्र' शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = चरित्रम् रूप सिद्ध होता है।

पुवः संज्ञायाम् ३।२।१८५।।
पवित्रम्
अर्थ—'पू' धातु से संज्ञा अर्थ में 'इत्र' प्रत्यय हो।
पवित्रम्—(पवित्र करने का साधन)।
'पू' धातु से 'पुवः संज्ञायाम्' से 'इत्र' प्रत्यय होकर = पू + इत्र
'ऊ' को गुण 'ओ' होकर = पो + इत्र
'एचोऽयवायावः' से अवादेश होकर = पव् + इत्र
प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = पवित्रम् रूप सिद्ध होता है।

अथोणादयः

कृ-वा-पा-जि-मि-स्वदि-साध्य सूभ्य उण्।।१।।
करोतीति-कारुः। वातीति-वायुः। पायुः-गुदम्। जायुः-औषधम्। मायुः-पित्तम्। स्वादुः। परकार्यमिति साधुः। आशु-शीघ्रम्।
अर्थ—कृ (करना), वा (गति), पा (पीना, रक्षा करना), जि (जीतना) मि (फेंकना), स्वद् (चखना), साध् (सिद्ध करना), तथा 'अश्' (व्याप्त होना), इन धातुओं से 'उण्' का विधान होता है।
रूप सिद्धि—
कारुः—(शिल्पी)। 'कृ' धातु से कर्ता में 'उण्' प्रत्यय होने पर णित् होने से 'ऋ' को 'आर्' वृद्धि होकर 'कारु' यह प्रातिपदिक बना। 'कारु' के प्रथमा एक वचन में यह रूप कारुः सिद्ध होता है।

वायुः—(हवा)।

'वा' धातु से 'उण्' प्रत्यय होने पर 'आतो युक् चिण्कृतोः' से युक् का आगम होकर वायुः रूप सिद्ध होता है।

पायुः—(गुदा)।

'पा' धातु सो 'उण्' प्रत्यय होकर = पा + उण्
= पा + उ
'अतो युक् चिण्कृतोः' से युक् (य) का आगम = पा + य + उ
प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = पायुः रूप सिद्ध होता है।

जायुः—(औषधि)।

'जि' धातु से 'उण्' णित् होने से वृद्धि तथा 'आय्' आदेश होकर जायुः रूप सिद्ध होता है।

मायुः—(पित्त)।

'मि' (प्रक्षेपण) धातु से उण् णित् होने से वृद्धि तथा 'आय्' आदेश होकर मायु प्रातिपदिक की विभक्ति कार्य होकर मायुः रूप सिद्ध होता है।

स्वादुः—(स्वाद में अच्छा)।

'स्वद्' धातु से 'उण्' प्रत्यय, 'अत उपधायाः' से उपधा दीर्घ होकर स्वादु प्रातिपदिक की विभक्ति कार्य होकर 'स्वादुः' रूप सिद्ध होता है।

साधुः—(सज्जन पुरुष)।

'साध्' धातु से 'उण्' प्रत्यय होकर 'साधु' प्रातिपदिक बनता है।

आशु—अश्नुते व्याप्नोति (शीघ्र होने वाला)।

'अश्' धातु से 'उण्' प्रत्यय होने पर उपधा दीर्घ होकर 'आशु' प्रातिपदिक बना।

उणादयो बहुलम् ३।३।१।।

एते वर्तमान संज्ञायां च बहुलं स्युः। केचिद् अविहिता अप्यूह्याः। संज्ञासु धातु रूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे। कार्याद् विद्याद् अनूबन्धम् एतच्छास्त्रम् उणादिषु।।

इत्युणादयः।।

अर्थः—'उण्' आदि प्रत्यय वर्तमान काल में और संज्ञा में बहुल हों। यहाँ बहुल ग्रहण से कोई अविहित अर्थात् जिनका किसी सूत्र से विधान नहीं किया गया, उनकी भी कल्पना कर लेनी चाहिए।

✤

अथोत्तरकृदन्त प्रकरणम्

(तुमुन्, ण्वुल् प्रत्यय विधान)

तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ३।३।१०।।

क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यत्यर्थे धातोरेतौ स्तः। मान्त त्वादव्ययत्वम्। कृष्णं दृष्टुं याति। कृष्णं दर्शको याति।

अथोत्तरकृदन्तमितिः—अब उत्तर कृदन्त प्रकरण प्रारम्भ होता है। पूर्व प्रकरण में बताए गए प्रत्यय प्रायः कारक अर्थों में होते हैं। उत्तर प्रकरण में बताए जाने वाले प्रत्यय प्रायः भाव में होते हैं। उनमें से कुछ प्रत्यय से अव्यय पद बनते हैं।

अर्थ—क्रियार्थ क्रिया उपपद रहते धातु से भविष्यत् अर्थ में 'तुमुन्' और ण्वुल् प्रत्यय हों। जिस क्रिया के लिए दूसरी क्रिया की जाती है उससे ये प्रत्यय होते हैं। मान्त होने से तुमुनन्त पद अव्यय होते हैं। तुमुन् का 'उन्' इत्संज्ञक हैं। तुम् शेष रहता है। 'तुमुन्' भाव अर्थ में होता है किन्तु 'ण्वुल्' प्रत्यय मान्त न होने से अव्यय नहीं होता बल्कि कर्ता अर्थ में ही होता है। 'ण्वुल' का वु > अक आदेश होता है।

रूप सिद्धि—

कृष्णं द्रष्टुं याति—(कृष्ण को देखने के लिए जाता है।)

यहाँ जाना क्रिया दर्शन क्रिया के लिए की जा रही है। अतः 'याति' जाना क्रिया के उपपद रहते 'दृश' धातु से तुमुन् प्रत्यय होकर = दृश् + तुमुन्

= दृश् + तुम्

'सृजिदृशो....' सूत्र से 'दृश' में स्थित ऋ से परे 'अम्' (अ) का

आगम होकर = दृ अ श् + तुम्

'इकोयणचि' से ऋ को र् होकर = द् र् अ श् + तुम्

'व्रश्च भ्रस्ज......' से श् को ष् होकर = द् र् अ ष् + तुम्

= द्रष् + तुम्

'ष्टुनाष्टुः' सूत्र से 'त्' को 'ट्' होकर = द्रष् + टुम् = द्रष्टुम् बना।

'द्रष्टुम्' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर 'द्रष्टुम्' रूप बनता है।

टिप्पणी—यहाँ 'याति' क्रियार्थ क्रिया उपपद है। 'कृष्णम्' यह कर्म है। 'न लोकाव्यय निष्ठा खलर्थ तृनाम्' से षष्ठी का निषेध हुआ। अतः कर्मणि द्वितीया हुई। कृष्ण कर्मक भविष्यत्कालिक दर्शनार्थ गमन—यह इस वाक्य का तात्पर्य है।

कृष्णं दर्शको याति—(कृष्ण को देखने वाला जाता है)।

यहाँ 'याति' क्रियार्थ क्रिया उपपद है। अतः 'दृश्' धातु से 'ण्वुल्' प्रत्यय का विधान हुआ।

= दृश् + ण्वुल्

= दृश् + वु

'युवोरनाकौ' से वु को अक आदेश होकर = दृश् + अक्

ऋ को गुण अर् आदेश होकर = द् अर् + श् + अक्

प्रादिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = दर्शकः रूप सिद्ध हुआ।

टिप्पणी—'ण्वुल' प्रत्ययान्त शब्द तीनों लिङ्गों में प्रयुक्त होते हैं। 'अकेनो....' सूत्र से षष्ठी विभक्ति का निषेध होकर कृष्ण में द्वितीया विभक्ति हुई।

काल समयवेलासु तुमुन् ३।३।१६७।।

कालार्थेषूपपदेषु तुमुन्। कालः समयो वेला वा भोक्तुम्।

अर्थ—काल, समय, वेला आदि कालार्थक शब्दों के उपपद होने पर धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है।

रूप सिद्धि—

कालः समयो वेला वा भोक्तुम्—(खाने का समय है।)

यहाँ काल वाची शब्दों के उपपद होने पर 'भुज्' धातु से 'तुमुन' प्रत्यय होकर

= भुज् + तुमुन्

= भुज् + तुम्

'पुगन्तलघूपधस्य च' सूत्र से उ को गुण ओ होकर = भोज् + तुम्

'चोः कुः' सूत्र से ज् को ग् एवं चर्त्व क् होकर = भोक् + तुम्

अव्यय पद = भोक्तुम् रूप सिद्ध हुआ।

'घञ्' प्रत्यय विधान

भावे ३।३।१८।।

सिद्धावस्थाऽऽपन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ्। पाकः।

अर्थ—सिद्ध अवस्था को प्राप्त धातु का अर्थ भाव वाच्य हो तो धातु से 'धञ्' प्रत्यय हो। 'घञ्' का केवल 'अ' शेष रहता है। 'घ' और 'ञ्' इत्संज्ञक हैं।

व्याख्या—धातु का अर्थ दो प्रकार का होता है—(१) साध्यावस्थापन्न, (२) सिद्धावस्थापन्न। तिङन्त अवस्था में भाव साध्यावस्थापन्न होता है और 'घञ्' आदि से सिद्धावस्थापन्न भाव की प्रतीति होती है। धात्वर्थ की पूर्ण सिद्धता कृदन्त शब्दों से प्रकट होती है। सिद्धावस्थापन्न होने से भाव द्रव्य की भाँति प्रकाशित होता है। द्रव्यवत् होने से घञन्त आदि से लिङ्ग वचन का योग हो जाता है। धञ् प्रत्ययान्त भाव वाचक संज्ञाएँ पुल्लिग होती हैं।

पाकः—(पकाना)।

'पच्' धातु से 'भावे' सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय होकर = पच् + घञ्
= पच् + अ
'अत उपधायाः' से उपधा वृद्धि होकर = पाच् + अ
'चजोः कुः घिण्ण्यतोः' सूत्र से 'च्' को 'क्' होकर = पाक् + अ
प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = पाकः रूप सिद्ध होता है।

अकर्तरि च कारके संज्ञायाम् ३।३।१९।।

कर्तृभिन्ने कारके घञ् स्यात्।

अर्थ—कर्ता से भिन्न कारक अर्थ में संज्ञा में धातु से 'घञ्' प्रत्यय हो।

घञि च भाव-करणयोः ६।४।२७।।

रञ्जेर्नलोपः स्यात्। रागः। अनयोः किम्-रज्यत्यस्मिन्निति रङ्गः।

अर्थ—भाव और करण कारक में हुए 'घञ्' परे रहते रञ्ज् धातु के नकार का लोप हो।

रागः—(रंगना या रंग जिससे रंगा जाता है।)

यहाँ 'रञ्ज्' धातु से भाव में रंगने का जो साधन हो, इस प्रकार 'करण' अर्थ में 'अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्' से 'घञ्' प्रत्यय होकर = रञ्ज् + घञ्
'घञि च भावकरणयोः से न का लोप होकर = रज् + अ
'अत उपधायाः' से उपधा वृद्धि होकर = राज् + अ
'चोः कुः' से ज् को ग् आदेश होकर = राग् + अ
'राग' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = रागः सिद्ध हुआ।

निवास-चिति-शरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः ३।३।४१।।

एषु चिनोतेर्घञ्, आदेश्च ककारः। उपसमाधानम्-राशीकरणम्। निकायः। कायः। गोमय-निकायः।

अर्थ—निवास, चिति (यज्ञ में अग्नि का स्थल विशेष), शरीर और उपसमाधान अर्थ में 'चिञ्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय हो और आदि वर्ण को ककार। 'उपसमाधान' का अर्थ 'राशीकरण' या ढ़ेर लगाने से है।

रूप सिद्ध—

निकायः—(निवास, घर)।

'नि' उपसर्ग पूर्वक 'चिञ्' धातु से 'निवास.....कः' सूत्र से 'घञ्' प्रत्यय होकर
= नि + चिञ् + घञ्
= नि + चि + अ
आदि 'च' को 'क' होकर = नि + कि + अ

'अचोञ्णिति' से 'इ' को वृद्धि 'ऐ' होकर = नि + कै + अ
'एचोऽयवायाव:' से आय्' आदेश होकर = नि + क् आय् + अ
= निकाय
प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभवित कार्य होकर = निकाय: रूप सिद्ध होता है।

काय: (शरीर)।

'चि' धातु से 'निवास-चिति....क:' से 'घञ्' प्रत्यय होकर = चि + घञ्
= चि + अ
आदि 'च' को 'क' होकर = कि + अ
'अचोञ्णिति' सूत्र से 'इ' को वृद्धि से होकर = कै + अ
'एचोऽयवायाव:' सूत्र से 'आय्' आदेश होकर = काय बना।
प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = काय: रूप सिद्ध होता है।

गोमय निकाय:—(गोबर का ढ़ेर)।

'गोमय' युक्त 'नि' उपसर्ग पूर्वक 'चि' धातु से 'राशीकरण'-ढ़ेर लगाना-अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय हुआ। पूर्व 'निकाय' की तरह 'गोमय निकाय:' की भी सिद्धि होती है।

'अच्' प्रत्यय विधान

एरच् ३।३।५६।। एरच् ३।३।५६।। (ए: + अच्)

इवर्णान्ताद् अच्। चय:। जय:।।

अर्थ—इवर्णान्त धातु से भाव अर्थ में 'अच्' प्रत्यय हो।

व्याख्या—यह सूत्र घञ् का बाधक है। दोनों में 'अ' ही शेष रहता है। किन्तु 'घञ्' के ञित् होने से परे रहते वृद्धि होती है। 'अच्' के परे नहीं। 'अच्' प्रत्ययान्त शब्द भी पुल्लिङ्ग होते हैं।

रूप सिद्धि—

चय:—(चुनना)।

'इ' वर्णान्त 'चि' धातु से 'एरच्' सूत्र से भाव में अच् प्रत्यय होकर = चि + अच्
'इ' को गुण 'ए' तथा 'एचोऽयवायाव: से 'ए' को अय् होकर = चय् + अ
'चय' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = चय: रूप सिद्ध होता है।

जय:—(जीतना)।

'इ' वर्णान्त 'जि' धातु से 'एरच्' सूत्र से 'अच्' होकर = जि + अच्
= जि + अ
'इ' को गुण 'ए' तथा 'एचोऽयवायाव:' से 'ए' को अय् होकर = जय् + अ
'जय' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = जय: रूप सिद्ध होता है।

अप् प्रत्यय विधान

ऋदोरप् ३।३।५७।। (ऋदोः + अप्)

ऋदन्ताद् उवर्णान्ताद् अप्। करः। गरः। यवः। लवः। स्तवः। पवः।

अर्थ—दीर्घ ऋकारान्त और उवर्णान्त धातुओं से भाव अर्थ में अप् प्रत्यय हो।

व्याख्या—अप् प्रत्यय भी 'घञ्' प्रत्यय का बाधक है। अप् का भी 'अ' शेष रहता है। 'अप्' प्रत्ययान्त शब्द भी पुल्लिग होते हैं। इस तीनों (धञ्, अच् एवं अप्) में अनुबन्ध कृत अन्तर स्वर भेद के लिए हैं। 'अप्' में पित् होने से अनुदात्त होता है।

रूप सिद्धि—

करः—(विखेरना, हाथ)।

यहाँ 'कॄ' धातु से 'ऋदोरप्' सूत्र से 'अप्' प्रत्यय होकर = कॄ + अप्

= कॄ + अ

ॠ को 'गुण' 'अर्' होकर = कर् + अ

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = करः रूप सिद्ध होता है।

गरः—(निगलना)।

'गॄ' धातु से 'अप्' प्रत्यय होकर 'ॠ' को गुण 'अर्' होकर 'कर्' शब्द बना। 'कर' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर 'गरः' रूप सिद्ध होता है।

यवः—(जौ, मिलाना)।

'उ' वर्णान्त 'यु' धातु से 'अप्' प्रत्यय होकर, गुण उ को ओ और 'एचोऽयवायावः' सूत्र से 'ओ' को अवादेश होकर 'यव' शब्द बनता है। इसकी प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर यवः रूप सिद्ध होता है।

लवः—(अंश, काटना)।

'उ' वर्णान्त 'लू' धातु से 'अप्' प्रत्यय होकर, 'ऊ' को गुण ओ एवं अवादेश होकर ओ को अव् होता है। इस प्रकार 'यव' शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर 'लवः' रूप सिद्ध होता है।

स्तवः—(स्तोत्र, स्तुति)।

'उ' वर्णान्त 'स्तु' धातु से 'अप्' प्रत्यय होकर, उ को गुण ओ, एवं अवादेश होकर 'स्तव' शब्द बनता है। इसकी प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर 'स्तवः' रूप सिद्ध होता है।

पवः—(पवित्र करना)।

पूर्व 'स्तवः' की तरह 'पू' धातु से अप् प्रत्यय होकर, गुण, अवादेश होकर पवः रूप सिद्ध होता है।

(वा.) घञर्थे क-विधानम्। प्रस्थः। विघ्नः।

अर्थ—'घञ्' प्रत्यय के अर्थ में 'क' प्रत्यय हो।

'क' प्रत्यय का ककार इत् है। 'अ' शेष रहता है। इसके परे रहते 'गुण....' आदि का निषेध है।

शब्द सिद्धि—

प्रस्थः—प्रतिष्ठन्ति धान्यान्यस्मिन् (परिमाण विशेष, पर्वत का शिखर)।

'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'स्था' धातु 'क' प्रत्यय होकर = प्र + स्था + क
= प्र + स्था + अ
'आतो लोप इति च' से 'स्था' के 'आ का लोप होकर = प्र + स्थ् + अ
= प्रस्थ बना।

'प्रस्थ' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = प्रस्थः रूप सिद्ध होता है।

विघ्नः—(बाधाएँ)।

'वि' उपसर्ग पूर्वक 'हन्' धातु से 'क' प्रत्यय होकर = वि + हन् + क्
= वि + हन् + अ
'गमहन जन.....लोपः' से ह के अ का लोप होकर = वि + ह् न् + अ
'हन्तेर्ञिणन्नेषु' से 'ह' को 'घ' होकर = वि + घ्न् + अ
= विघ्न बना।

'विघ्न' की प्रातिपदिक संज्ञा, विभक्ति कार्य होकर = विघ्नः रूप सिद्ध होता है।

ड्वितः क्त्रिः ३।३।८८।।

अर्थ—जिस धातु का डु इत् हो, उससे 'क्त्रि' प्रत्यय हो।

क्त्रेर्मम् नित्यम् ४।४।२०।।

क्त्रि-प्रत्यान्तात् मम् निर्वृत्तेऽर्थे। पाकेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम्। डुवप्-उप्त्रिमम्।

अर्थ—क्त्रि प्रत्ययान्त से 'मप्' प्रत्यय होता है, निर्वृत्त-सिद्ध अर्थ में।

शब्द सिद्धि—

पक्त्रिमम—पाकेन निर्वत्तम (पका हुआ)।

'पच्' धातु से 'ड्वित्ः क्त्रिः' से 'क्त्रि' प्रत्यय होकर = पच् + क्त्रि
= पच् + त्रि
'चोः कुः' से च् को क् (कुत्व) होकर = पक् + त्रि
निर्वृत्त अर्थ में 'मप्' (म) प्रत्यय होकर = पक् + त्रि + मप् (म)
= पक्त्रिम

प्रातिपदिक संज्ञा एवं प्रथमा ए० व० में = पक्त्रिमम् रूप सिद्ध होता है।

उप्त्रिमम्ः—वापेन निर्वृत्तम् (बोने से सिद्ध)।

'डुवप्' (उगाना) धातु से क्त्रि प्रत्यय होकर = वप् + क्त्रि
= वप् + त्रि

'क्त्रेर्मम् नित्यम्' से 'मप्' क्त्रि प्रत्यय होकर = वप् + त्रि + मप् (म)
= वप् + त्रि + म
'वचि.....किति' व को सम्प्रसारण 'उ' होकर = उ + अप् + त्रि + म
'सम्प्रसारणाच्च्' से पूर्व रूप होकर = उप् + त्रि + म

इसकी प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = उप्त्रिमम्' रूप सिद्ध होता है।

ट्वितोऽथुच् ३।३।८९।। (टु + इतः + अथुच्)

टुवेप् कम्पने। वेपथुः

अर्थ—जिस धातु का 'टु' इत् हो, उससे अथुच् प्रत्यय हो भाव अर्थ में। 'अथुच्' का 'चकार' इत्संज्ञक है। 'अथुच्' प्रत्यय से बने शब्द पुल्लिग होते हैं।

वेपथुः—(काँपना)।

'टुवेप्' धातु से 'अथुच्' प्रत्यय होकर = वेप् + अथुच् (अथु)

'वेपथु' प्रातिपदिक बना। प्र. ए. व. में 'वेपथुः' रूप सिद्ध हुआ।

यज-याच-यत-विच्छ-प्रच्छ-रक्षोनङ् ३।३।९०।।

यज्ञः। याच्ञा। यत्नः। विश्नः। प्रश्नः। रक्ष्णः।

अर्थ—यज्, याच्, यत्, विच्छ, प्रच्छ और रक्ष धातुओं से 'नङ्' प्रत्यय हो भाव आदि अर्थों में।

'नङ्' का ङकार इत्संज्ञक है। नङ् प्रत्ययान्त शब्द 'याच्ञा' को छोड़कर पुल्लिग होते हैं।

रूप सिद्धि—

यज्ञः—(यज्ञ)।

'यज्' धातु से 'यज.....नङ्' सूत्र से नङ् प्रत्यय होकर = यज् + नङ्
= यज् + न
'स्तोः श्चुनाश्चुः' से 'न' को 'ञ्' होकर = यज् + ञ्
(ज् + ञ् = ज्ञ) = यज्ञ

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = यज्ञः रूप सिद्ध होता है।

याच्ञा—(माँगना)

'याच्' धातु से 'यज.....नङ्' सूत्र से 'नङ्' प्रत्यय होकर = याच् + नङ्
= याच् + न
'स्तोः श्चुनाश्चुः' से 'न' को 'ञ्' होकर = याच् + ञ
= याच्ञ
स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होकर = याच्ञ + आ
सवर्ण दीर्घ होकर (अ + आ = आ) = याच्ञा

प्रातिपदिक संज्ञा एवं प्र. ए. व. विभक्ति कार्य होकर = याच्ञा रूप सिद्ध होता है।

यत्नः—(प्रयत्न)।

'यत्' धातु से 'यजयाच्....नङ्' सूत्र से 'नङ्' प्रत्यय होकर = यत् + नङ्
= यत् + न

'यत्न की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = यत्नः रूप सिद्ध होता है।

विश्नः—(गति, कान्ति)।

'विच्छ्' (जाना) धातु से 'यजयाच्....नङ्' से 'नङ्' प्रत्यय होकर
= विच्छ् + नङ्
= विच्छ् + न

'च्छ्वाः शूडनुनासिके च' से 'च्छ' को 'श्' होकर = विश् + न

'विश्न' की प्रातिपदिक संज्ञा तथा विभक्ति कार्य होकर = विश्नः रूप सिद्ध होता है।

प्रश्नः—(प्रश्न)।

'प्रच्छ्' धातु से 'यजयाच्....नङ्' सूत्र से 'नङ्' प्रत्यय होकर = प्रच्छ् + नङ्
= प्रच्छ् + न

'च्छवाः शूडनुनासिके च' सूत्र से '[illegible] को 'श्' होकर = प्रश् + न

'प्रश्न' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = प्रश्नः रूप सिद्ध होता है।

रक्ष्णः—(रक्षा)।

'रक्ष्' धातु से भाव में 'यजयाच...नङ' सूत्र से 'नङ्' प्रत्यय होकर
= रक्ष् + नङ
= रक्ष् + न

'रषाभ्यां नो णः समानपदे' सूत्र से 'न' को 'ण' होकर = रक्ष् + ण

'रक्ष्ण' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = रक्ष्णः रूप सिद्ध होता है।

स्वपो नन् ३।३।९१।।

स्वप्नः—

अर्थ—'स्वप्' धातु से 'नन्' प्रत्यय का विधान हो। 'न्' की इत्संज्ञा होती है। यहाँ नङ् से नन् का ङित् से गुण निषेध है इसके अतिरिक्त स्वर में भी अन्तर है।

स्वप्नः—(स्वप्न)।

'स्वप्' धातु से 'स्वपो नन्' सूत्र से 'नन्' प्रत्यय होकर = स्वप् + नन्
= स्वप् + न = स्वप्न

'स्वप्न' शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = स्वप्नः रूप सिद्ध होता है।

उपसर्गे घोः किः ३।३।९२।।

प्रधिः। उपधिः।

अर्थः—उपसर्ग पूर्वक 'घु' संज्ञक धातुओं से 'कि' प्रत्यय हो। 'कि' प्रत्यय का ककार इत् है। 'इ' शेष रहता है। 'कि' प्रत्ययान्त शब्द पुल्लिग होते हैं। घु संज्ञा 'दाधाध्वदाप्' से 'दा' रूप और 'धा' रूप धातुओं की होती है।

रूप सिद्धि—

प्रधिः—(चक्र की नेमि)।

'प्र' उपसर्ग पूर्वक घु संज्ञक 'धा' धातु से 'कि' प्रत्यय होकर = प्र + धा + कि

= प्र + धा + इ

'आतो लोप इटि च' से आकार का लोप होकर = प्र + ध् + इ

= प्रधि बना।

'प्रधि' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = प्रधिः रूप सिद्ध होता है।

उपधिः—(कपट, दम्भ)।

'उप' उपसर्ग पूर्वक 'धा' धातु से 'कि' प्रत्यय होकर = उप + धा + कि

= उप + धा + इ

'आतो लोप इटि च' से धा के 'आ' का लोप होकर = उप + ध् + इ

'उपधि' शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = उपधिः रूप सिद्ध होता है।

'क्तिन्' प्रत्यय विधान

स्त्रियां क्तिन् ३।३।९४।।

स्त्रीलिङ्गेभावे क्तिन् स्यात्। घञोऽपवादः। कृतिः। स्तुतिः।

अर्थः—स्त्रीलिंङ्ग भाव में 'क्तिन्' प्रत्यय हो। 'क्तिन्' में 'ति' शेष रहता है। क् और न् इत्संज्ञक हैं। 'क्तिन्' प्रत्यय से बने शब्द स्त्री लिङ्ग होते हैं। यह 'घञ्' का बाधक है।

रूप सिद्धि—

कृतिः—(कार्य)।

'कृ' धातु से 'स्त्रियां क्तिन्' सूत्र से 'क्तिन्' प्रत्यय होकर = कृ + क्तिन्

= कृ + ति = कृति

'कृति' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = कृतिः रूप सिद्ध होता है।

स्तुतिः—(स्तवन)।

'स्तु' धातु से 'स्त्रियां क्तिन्' सूत्र से क्तिन् प्रत्यय होकर = स्तु + क्तिन्

= स्तु + ति

'स्तुति' शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभवित कार्य होकर = स्तुतिः रूप सिद्ध होता है।

(वा.) ॠ-ल्वादिभ्यः क्तिन् निष्ठावद्वाच्यः। (ॠ + ल् + आदिभ्यः............)

तेन् नत्वम्-कीर्णिः। लूनिः। धूनिः। पूनिः।

अर्थ—ॠकारान्त और लू आदि धातुओं से परे क्तिन् निष्ठा के समान हो। निष्ठावद्भाव का प्रयोजन तकार को नकार होना है।

रूप सिद्धि—

कीर्णिः—(बिखेरना)।

'कॄ' धातु से 'स्त्रियां क्तिन्' सूत्र से 'क्तिन्' प्रत्यय होकर = कॄ + क्तिन्
= कॄ + ति

'ॠत् इद्धातोः' से ॠ को रपर सहित 'इर्' होकर = किर् + ति

'हलि च' से 'इ' को दीर्घ ई होकर = कीर् + ति

निष्ठावद्भाव होने से 'र्' से परे त को न होकर = कीर् + नि

'न' को णत्व होकर = कीर् + णि = कीर्णि

इसकी प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = कीर्णिः रूप निष्पन्न होता है।

लूनिः(काटना)।

'लूञ्' धातु से 'स्त्रियां क्तिन्' सूत्र से क्तिन् प्रत्यय होकर = लू + क्तिन्
= लू + ति

'निष्ठावद् भाव होने से 'ॠल्वादिभ्य' से त् को न् होकर = लू + नि = लूनि

'लूनि' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = लूनिः रूप सिद्ध होता है।

उपर्युक्त शब्द सिद्धि की तरह धू-धूनिः (काँपना) एवं पू-पूनिः (पवित्रता) शब्दों की क्तिन् प्रत्यय के साथ निष्ठावद्भाव के कारण त को न होकर शब्द सिद्धि होती है।

(वा) सम्पदादिभ्यः क्विप्।।

संपत्। विपत्। आपत्।

अर्थ—सम् आदि उपसर्ग पूर्वक पद् धातु से भाव में 'क्विप्' प्रत्यय हो।

रूप सिद्धि—

सम्पत्—(सम्पत्ति)।

'सम' उपसर्ग पूर्वक 'पद्' धातु से 'सम्पदादिभ्यः क्विप्' वार्तिक द्वारा
भाव में 'क्विप्' प्रत्यय होकर = सम् + पद् + क्विप्

'क्विप्' का सर्वापहार लोप होकर = सम् + पद् = सम्पद्

'सम्पद्' शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = सम्पत् रूप सिद्ध होता है।

विपत्—(विपत्ति)।

'वि' उपसर्ग पूर्वक 'पद्' धातु से 'समपदादिभ्यः क्विप्' से क्विप् प्रत्यय होकर
= वि + पद् + क्विप्

'क्विप्' प्रत्यय का सर्वापहार लोप होकर = वि + पद्

'विपद्' शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = विपत् रूप सिद्ध हुआ।

आपत्—(आपत्ति)।

'आङ्' उपसर्ग पूर्वक 'पद्' धातु से क्विप्' प्रत्यय होकर पूर्व शब्दों की भाँति आपत् शब्द सिद्ध होता है।

(वा) क्तिन्नपीष्यते

स्म्पत्तिः। विपत्तिः। आपत्तिः।

अर्थ—क्तिन् प्रत्यय भी इन उपसर्गों के पूर्व रहते 'पद' धातु से होता है।

रूप सिद्धि—

सम्पत्तिः—(सम्पदा)।

'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'पद्' धातु से 'क्तिनपीष्यते' वार्तिक से 'क्तिन्' प्रत्यय होकर
= सम् + पद् + क्तिन्
= सम् + पद् + ति

'खरि च' सूत्र से 'द' को 'त' होकर = सम् + पत् + ति

'सम्पत्ति' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = सम्पत्तिः शब्द सिद्ध होता है।

उपर्युक्त 'सम्पत्तिः' की तरह 'क्तिन्' प्रत्यय होकर तथा 'खरि च' से द् को त् होकर विपत्तिः एवं आपत्तिः रूप सिद्ध होते हैं।

ऊति-यूति-जूति-साति-हेति-कीर्तयश्च ३।३।९७।।

एते निपात्यन्ते

अर्थ—ऊति, पूति, जूति, साति, हेति और कीर्ति इन 'क्तिन्' प्रत्ययान्त शब्दों का निपातन किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि किसी कार्य का विधान किसी सूत्र से नहीं हो पाता है तो वह निपातन के द्वारा सिद्ध होता है।

रूप सिद्धि—

ऊतिः (रक्षा)।

'अव्' (रक्षा करना) धातु से क्तिन् प्रत्यय होकर = अव् + क्तिन्
= अव् + ति

'ज्वरत्वर.....उपधायाश्च' से अ तथा व् के स्थान पर ऊठ् (ऊ) आदेश होकर
= ऊ + ति

'ऊति' शब्द की प्रातिपदि क संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = ऊतिः रूप सिद्ध होता है।

यूतिः–(मिश्रण)।

'यु' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय होकर = यु + क्तिन्
= यु + ति
निपातन से दीर्घ होकर = यू + ति
'यूति' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं स्वादि कार्य होकर = 'यूति' रूप सिद्ध होता है।

जूतिः–(वेग)।

'जु' धातु से 'क्तिन् प्रत्यय होकर = जु + क्तिन्
= जु + ति
निपातन से दीर्घ होकर = जू + ति
'जूति' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = जूतिः रूप सिद्ध होता है।

सातिः–(अन्त)।

'सो' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय होकर = सो + क्तिन्
= सो + ति
'द्यति स्यतिमास्थामिति किति' सूत्र से ओ को प्राप्त इ का
निपातन से अभाव तथा 'आदेच उपदेशे अशिति' से ओ को आ आदेश होकर = सा + ति = साति
'साति' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = सातिः रूप सिद्ध होता है।

हेतिः–(हथियार)।

'हन्' धातु से 'अतियूति....' सूत्र से 'क्तिन्' प्रत्यय होकर = हन् + क्तिन्
= हन् + ति
निपातन से न् को इकार होकर = ह इ + ति
हकारोत्तरवर्ती अ के साथ गुण होकर = ह् ए + ति = हेति
'हेति' शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = हेतिः रूप सिद्ध हुआ।

कीर्तिः–(यश)।

'कृत्' धातु से 'ण्यासश्रन्थोयुच्' से 'युच्' का अभाव, 'अतियूति...' सूत्र से
क्तिन् प्रत्यय होकर = कृत् + क्तिन्
= कृत् + ति
'उपधायाश्च' से 'ऋ' को 'इर्' होकर = क् इर् त् + ति
'हलि च' से दीर्घ होकर = कीर् + त् + ति = कीत्ति
इसकी प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = कीर्तिः रूप सिद्ध होता है।

ज्वरत्वरस्त्रि व्यविमवामुपधायाश्च ६।४।२०।।

एषामुपधा–वकारयोरूठ् अनुनासिके, क्वौ, झलादौ क्ङिति च। अतः क्विप्। जूः। तूः। स्त्रूः। ऊः। मूः।

अर्थ—ज्वर, त्वर्, स्त्रिव्, अव् और मव् धातुओं के उपधा और वकार को ऊठ् हो अनुनासिक क्वि और झलादि कित् ङित् प्रत्यय परे रहते।

व्याख्या—यहाँ इन् धातुओं के साथ 'क्विप्' प्रत्यय परे रहते 'ऊठ्' का विधान किया गया है तो इनसे 'क्विप्' प्रत्यय सिद्ध होता है।

रूप सिद्धि—

जूः—(रोग)।

'ज्वर' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय होकर = ज्वर् + क्विप्

'क्विप्' प्रत्यय का सर्वापहार लोप होकर = ज्वर्

'ज्वरत्वर....' सूत्र से 'ज्वर' धातु की उपधा (अ) तथा व् को ऊठ् होकर

= ज् ऊठ् (ऊ) र् = जूर्

(जूर् की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = जूः सिद्ध होता है।

तूः—(शीघ्र करना)।

'त्वर' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय होकर, सर्वापहार लोप, उपधा अकार तथा वकार को 'ऊठ्' आदेश होकर 'तूर्' शब्द की भाँति प्रातिपदिक संज्ञा तथा विभक्ति कार्य होकर तूः रूप सिद्ध होता है।

स्रूः—(चलने वाला)।

'स्त्रिव्' धातु से 'क्विप्' और ऊठ् होने से दीर्घ अकारान्त प्रातिपदिक बना। स्रूः, स्त्रुवौ, स्त्रुवः आदि रूप बनते हैं।

ऊः—(रक्षक)।

'अव्' धातु 'क्विप्' प्रत्यय होकर, सर्वापहार लोप, ऊठ् होकर 'ऊ' शब्द बना। 'ऊ' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर 'ऊः' रूप सिद्ध होता है।

मूः—(बाँधने वाला)।

'मव्' धातु से 'क्विप', सर्वापहार लोप, अ व् को ऊठ् आदेश होकर 'मू' बना। 'मू' की प्रातिपदिक संज्ञा तथा विभक्ति कार्य होकर मूः रूप सिद्ध होता है।

इच्छा ३।३।१०१।।

इषेर्निपातोऽयम्।

अर्थ—'इष्' धातु से श प्रत्यय का निपातन होता है।

रूप सिद्धि—

इच्छा—

'इष्' (इच्छा करना) धातु से 'श' का निपातन, शित् होने से 'यक्' के निपातन द्वारा अभाव होकर = इष् + श्

'सार्वधातु के यक्' से सार्वधातुक हो जाने से = इष् + अ

'इषुगमियमां छः' से ष् को छ् होकर = इ छ् + अ

'छे च' सूत्र से छ् को तुक् (त्) का आगम होकर = इ त् छ् + अ

त् को च् होकर = इ च् छ् + अ = इच्छ

'अजाद्यतष्टाप्' सूत्र से स्त्रीलिंङ्ग में 'टाप्' प्रत्यय होकर = इच्छा बना।

प्रातिपदिक संज्ञा एवं प्र० वि० ए० व० में सु तथा 'हलङ्याल्भ्यो दीर्घात् सुतिस्य पृंक्त हल्' से सु का लोप होकर = 'इच्छा' रूप सिद्ध होता है।

अ प्रत्ययात् ३।३।१०२।।

प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियामकारः प्रत्ययः स्यात्। चिकीर्षा। पुत्रकाम्या।

अर्थ—प्रत्ययान्त धातु से स्त्रीलिङ्ग में अकार प्रत्यय हो।

व्याख्याः—इस प्रत्यय का विधान भाव में और कर्ता कारक से भिन्न कारक में होता है। प्रत्यान्त धातुयें वे धातुएं होती हैं जो धातुओं से या सुबन्त शब्द से प्रत्यय लगा कर बनती है।

चिकीर्षाः—(करने की इच्छा)।

यहाँ 'कृ' धातु से इच्छार्थक 'सन्' प्रत्यय से 'चिकीर्ष' धातु बनती है। इस प्रकार सन्नन्त 'चिकीर्ष' धातु से 'अ प्रत्ययात्' से 'अ' प्रत्यय होकर

= चिकीर्ष + अ

'अतोलोपः' से 'अ' का लोप होकर = चिकीर्ष् + अ

स्त्रीत्व बोधक 'टाप्' प्रत्यय होकर = चिकीर्ष + आ

'अकः सवर्णे दीर्घः से दीर्घ होकर = चिकीर्षा

प्रातिपदिक संज्ञा तथा प्र० ए० व० में 'सु' प्रत्यय तथा

'हल....' से सु लोप होकर = चिकीर्षा रूप सिद्ध होता है।

पुत्रकाम्या—(पुत्र की इच्छा)।

'पुत्र' पद से 'काम्यच्' प्रत्यय होकर 'पुत्रकाम्य' धातु बनी। इस प्रकार प्रत्ययान्त 'पुत्रकाम्य' धातु से 'अप्रत्ययात्' से 'अ' प्रत्यय होकर

= पुत्रकाम्य + अ

'अतोलोपः' से 'अ' का लोप होकर = पुत्रकाम्य् + अ

स्त्रीत्व बोधक 'टाप्' (अ) प्रत्यय होकर = पुत्रकाम्य + आ

सवर्ण दीर्घ होकर = पुत्रकाम्या बना।

'ङ्याप् प्रतिपादिकात्' सूत्र से प्र० ए० व० में सु तथा

'हलङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल से सु लोप होकर = पुत्रकाम्या रूप बनता है।

गुरोश्च हलः ३।३।१०३।।

गुरुमतो हलन्तात् स्त्रियाम् 'अ' प्रत्ययः स्यात्। ईहा।

अर्थ—गुरुमान् (गुरु वर्ण वाली) हलन्त धातु से स्त्रीलिङ्ग में अ प्रत्यय हो।

रूप सिद्धि–

ईहा–(चेष्टा)।

'ईह्' धातु से 'गुरोश्च हलः' सूत्र से अ प्रत्यय होकर = ईह् + अ

स्त्रीत्व बोधक 'अजाद्यपष्टाप्' से टाप् (आ) प्रत्यय होकर

= ईह + टाप् (आ)

सवर्ण दीर्घ होकर = ईहा

'ङ्याप्प्रातिपदिकात्' से प्र. ए. व. में 'सु' प्रत्यय होकर

तथा 'हलङ्याब्भ्यो....हल्' से सु लोप होकर = 'ईहा' रूप सिद्ध होता है।

ण्यास श्रन्थो युच् ३।३।१०७।।

अकारस्यापवादः। कारणा। हारणा। आसना। श्रन्थना।

अर्थ–'णिच्' प्रत्ययान्त, आस् तथा श्रन्थ धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में भाव में 'युच्' प्रत्यय हो। 'युच्' का चकार इत्संज्ञक है। 'यु' को 'अन' आदेश होता है।

व्याख्या–यह 'युच्' प्रत्यय पूर्व 'अ' प्रत्यय का बाधक है। प्रत्ययान्त धातु होने के कारण तथा आस् और श्रन्थ् धातु से, गुरु युक्त हलन्त धातु होने के कारण 'गुरोश्च हलः' से प्राप्त 'अ' प्रत्यय का 'ण्यास-श्रन्थो युच्' सूत्र से निषेध हो गया है।

रूप सिद्धि–

कारणा–(यातना)।

'कृ' धातु से 'णिच्' प्रत्यय होकर 'कारि' धातु हुई। इससे 'ण्यास-श्रन्थो युच्' से 'युच्' प्रत्यय होकर

= कारि + युच्

= कारि + यु

'युवोरनाकौ' सूत्र से यु को अन आदेश होकर = कारि + अन

'णेरनिटि' सूत्र से णि (इ) का लोप होकर = कार् + अन

'न' को 'ण' होकर = कार् + अण

'अजाद्यतष्टाप्' से स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् (आ) होकर = कार् + अण + आ

सवर्ण दीर्घ होकर = कार् + अणा = कारणा बना।

'ङ्याप् प्रातिपदिकात्' से प्र. ए. व. से सु प्रत्यय तथा

'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' से सु लोप होकर = कारणा रूप सिद्ध होता है।

हारणाः–(हटाना)।

पूर्ववत् 'कारणा' की सिद्धि की तरह ण्यन्त 'हृ' धातु से हारि से युच् (यु) प्रत्यय होकर, यु को अन, णि (इ) लोप, न को ण, टाप्, सवर्णदीर्घ आदि कार्य होकर 'हारणा' शब्द सिद्ध होता है।

आसना–(स्थिति)।

'आस्' धातु से 'युच्' प्रत्यय होकर पूर्व की भाँति 'आसना' शब्द सिद्ध होता है।

श्रन्थना–'श्रन्थ्' धातु से 'युच्' प्रत्यय होकर पूर्व की भाँति 'श्रन्थना' शब्द सिद्ध होता है।

नपुंसके भावे क्तः ३।३।११४।।

अर्थ–नपुंसक लिङ्ग भाव में धातु से 'क्त' प्रत्यय हो। इसके पूर्व भाव प्रत्यय पुलिङ्ग एवं स्त्रीलिङ्ग में बताए गए हैं। अब कुछ प्रत्यय नपुंसकलिङ्ग में बताए जाते हैं।

ल्युट् च ३।३।११५।।

हसितम्। हसनम्

अर्थ–ल्युट् प्रत्यय भी नपुंसक भाव में हो।

रूप सिद्धि–

हसितम्–(हँसना)।

'हस्' धातु से 'नपुंसके भावे क्तः' सूत्र से 'क्त' प्रत्यय होकर = हस् + क्त

= हस् + त

आर्धधातुकस्येड्वलादेः से इट् का आगम होकर = हस् + इ + त = हसित

'हसित' शब्द को प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = हसितम् रूप सिद्ध होता है।

हसनम्–(हँसना)।

'हस्' धातु से 'ल्युट् च' सूत्र से नपु. लि. में 'ल्युट्' प्रत्यय होकर

= हस् + ल्युट्

= हस् + यु

'युवोरनाकौ' से 'यु' को अनादेश होकर = हस् + अन = हसन

'हसन' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = हसनम् रूप सिद्ध होता है।

पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण ३।३।११८।।

अर्थः–पुल्लिङ्ग संज्ञा में प्रायः 'घ' प्रत्यय हो करण तथा अधिकरण अर्थ में। घ में घकार इत्संज्ञक है।

छाऽऽदेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य ६।४।९६।।

द्वि-प्रभृत्युपसर्ग-हीनस्य छाऽऽदेर्ह्रस्वो घे परे। दन्ताश्छादन्तेऽनेनेति दन्तच्छदः। आकुर्वन्त्यस्मिन्निति-आकरः।

अर्थ–दो या दो से अधिक उपसर्गों से रहित 'छादि' धातु को 'घ' प्रत्यय परे होने पर ह्रस्व हो जाता है।

रूप सिद्धि–

दन्तच्छदः–दन्ताश्छाद्यन्ते अनेन (ओष्ठ)।

ण्यन्त 'छादि' धातु से 'पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण' सूत्र से 'घ' प्रत्यय होकर

= दन्त + छादि + घ

= दन्त + छादि + अ

'णेरनिटि' सूत्र से णि (इ) का लोप होकर = दन्त + छाद् + अ
'छादऽर्धेद्व्युपसर्गेस्य' से 'आ' को ह्रस्व 'अ' होकर = दन्त + छद् + अ
'छे च' से तुक् (त्) का आगम होकर = दन्त + त् + छद् + अ
'स्तोःश्चुनाश्चुः' से 'त' को 'च' होकर = दन्त + च् + छद् + अ
= दन्तच्छद बना।

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = दन्तच्छदः रूप सिद्ध होता है।

आकरः—आकुर्वन्ति अस्मिन् (जिसमें मिलकर लोग काम करते हों, खान)।

पूर्व की भाँति 'आङ्' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से 'घ' प्रत्यय होकर ऋ को गुण अर् होकर आ + कर् + (घ) अ = आकर शब्द बनता है। इसकी प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर 'आकरः' रूप सिद्ध होता है।

अवे-तृ-स्त्रोर्घञ् ३।३।१२०।।

अवतारः कूपादेः। अवस्तारो जवनिका।

अर्थ—'अव' उपसर्ग पूर्वक तृ और स्तृ धातुओं से घञ् प्रत्यय हो।

व्याख्या—तृ और स्तृ धातुओं से ऋकारान्त होने के कारण 'ऋदोरप्' सूत्र से 'अप्' प्रत्यय प्राप्त था। उसको बाधकर यह सूत्र संज्ञा में 'अव' उपसर्ग पूर्व रहते 'घञ्' प्रत्यय करता है।

रूप सिद्धि—

अवतारः—अवतरन्ति अत्र (जिसमें उतरते हैं, घाट)।

'अव' उपसर्ग पूर्वक 'तॄ' धातु से 'अवे-तॄ-स्त्रोर्घञ्' सूत्र से अधिकरण में
'घञ्' प्रत्यय होकर = अव + तॄ + घञ्
= अव + तॄ + अ
'अचोञ्णिति' से वृद्धि 'आर्' होकर = अव + तार् + अ

'अवतार' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = अवतारः रूप सिद्ध होता है।

अवस्तारः—अवस्तृणाति अनेन (जिससे ढका जाता है, पर्दा)।

'अव' उपसर्ग पूर्वक 'स्तॄ' धातु से करण में 'घञ्' प्रत्यय होकर
= अव + स्तॄ + घञ्
= अव + स्तॄ + अ
'अचोञ्णिति' से वृद्धि ऋ को आर् होकर = अव + स्तार् + अ
= अवस्तार बना।

'अवस्तार' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = अवस्तारः रूप सिद्ध हुआ।

हलश्च ३।३।१२१।।

हलन्ताद् घञ्। घापवादः। रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति–रामः। अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिरिति–अपामार्गः।

अर्थः—हलन्त धातु से घञ् प्रत्यय हो। यह सूत्र 'घ' का बाधक है। 'पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण' सूत्र से प्राप्त 'घ' को बाधकर यह होता है।

रामः—रमन्ते योगिनोऽस्मिन् (जिसमें योगी रमण करते हैं।)

'रम्' धातु से 'हलश्च' सूत्र से 'घञ्' होकर अधिकरण अर्थ में = रम् + घञ्
= रम् + अ

'अत उपधायाः' से वृद्धि 'आ' होकर = राम् + अ = राम बना।

'राम' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं प्र. ए. व. में विभक्ति कार्य होकर = रामः रूप सिद्ध हुआ।

अपामार्गः—अपमृज्यतेऽनेन व्याध्यादिः जिससे रोगादि का शोधन होता है, चिरचिरा। 'अप' उपसर्ग पूर्वक 'मृज्' धातु से 'हलश्च' से करण अर्थ में 'घञ्' प्रत्यय होकर
= अप + मृज् + घञ्
= अप + मज + अ

'मृजेर्वृद्धि': से ऋ को वृद्धि 'आर्' होकर = अप + मार्ज् + अ

'चजोः कुः चिघ्ण्ण्यतोः' से ज् को ग् होकर = अप + मार्ग + अ

'घञ्' प्रत्यय परे होने पर 'अप' के अन्त्य' को दीर्घ आ होकर = अपा + मार्ग् + अ
= अपामार्ग बना।

इसकी प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = अपामार्गः रूप सिद्ध हुआ।

'खल्' प्रत्यय विधान

ईषद् दुस्सुषु कृच्छ्राऽकृच्छ्रार्थेषु खल् ३।३।१२६।।

करणाऽधिकरणयोरिति निवृत्तम्। एष् दुःख सुखार्थेषूपपदेषु खल् 'तयोरेव' इति भावे कर्मणि च। कृच्छ्रं–दुष्करः कटो भवता। अकृच्छ्रेईषत्करः। सुकरः।

अर्थः—ईषद् (अल्प), दुस् (कठिनता से) और सु (सरलता से) इन दुःख सुखार्थ शब्दों के उपपद रहते धातुओं से खल् प्रत्यय हो। खल् का 'अ' शेष रहता है। इसका भाव और कर्म में विधान होता है। 'खल्' प्रत्यय करण एवं अधिकरण अर्थ में नहीं होते हैं।

रूप सिद्धि—

दुष्करः कटो भवता—(आपके द्वारा चटाई बनाना कठिन है।)

'दुःखेन कर्तुं योग्याः' इस अर्थ में 'कृच्छ्र' (कठिनता) बोधक 'दुस्' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से कर्म में 'ईषद्....खल्' सूत्र से

खल् प्रत्यय होकर = दुस् + कृ + खल्
= दुस् + कृ + अ

ऋ को गुण अर् होकर = दुस् + कर् + अ

को रुत्व, विसर्ग एवं षकार होकर = दुष् + कर् + अ = दुष्कर बना।

प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = दुष्करः रूप सिद्ध हुआ।

ईषत्कर :—सुखेन कर्तुं योग्यः (सहज में ही करने योग्य)।

'ईषद्' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से खल् प्रत्यय होकर = ईषत् + कृ + खल्

= ईषत् + कृ + अ

'ऋ' को गुण 'अर्' होकर = ईषत् + कर् + अ

= ईषत्कर बना।

'ईषत्कर' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = ईषत्करः रूप सिद्ध हुआ।

सुकरः—(सरलता से किया जाने योग्य)।

उपर्युक्त 'ईषत्करः' की भाँति 'सुकरः' रूप भी सिद्ध होता है।

आतो युच् ३।३।१२८।।

खलोऽपवादः। ईषत्पानः सोमो भवता। दुष्पानः। सुपानः।

अर्थ—आकारान्त धातु से (पूर्वोक्त उपसर्गों के होने पर) 'युच्' प्रत्यय हो। यह 'युच्' प्रत्यय 'खल' प्रत्यय का अपवाद (बाधक) है। 'युच्' का 'यु' शेष रहता है। तथा 'यु' को 'अन' आदेश होता है।

रूप सिद्धि—

ईषत्पानः सोमो भवता—(आपके लिए सोमपान करना सरल है।)

यहाँ 'ईषद्' पूर्वक 'पा' धातु से 'आतो युच्' सूत्र से 'युच्' प्रत्यय होकर

= ईषत् + पा + युच्

= ईषत् + पा + यु

'युवोरनाकौ' सूत्र से 'यु' को अनादेश होकर = ईषत् + पा + अन = ईशत्पान

'ईषत्पान' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर = ईषत्पानः रूप सिद्ध होता है।

दुष्पानः—(दुःख से पिया जाने वाला)।

यहाँ 'दुस्' उपसर्ग पूर्वक 'पा' धातु से 'अतो युच्' सूत्र से 'युच्' प्रत्यय होकर, यु को अन आदेश, स् को रुत्व, विसर्ग एवं षकार होकर 'दुष्पान' शब्द बनता है। 'दुष्पान' की प्रातिपदिक संज्ञा एवं विभक्ति कार्य होकर 'दुष्पानः रूप सिद्ध होता है।

सुपानः—(सुख से पिया जाने योग्य)।

इस शब्द की सिद्धि पूर्वोक्त प्रकार से ही होती है। कर्म में प्रत्यय होने से उससे प्रथमा तथा 'भवता' तृतीयान्त कर्ता है।

'क्त्वा' प्रत्यय विधान

अलं-खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा ३।४।१८।।

प्रतिषेधार्थयोरलं-खल्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यात्।

प्राचां ग्रहणं पूजार्थम्।

'अमैवाऽव्ययेन' इति नियमात् नापपद समासः। 'दो दद्घोः' अलं दत्वा। 'घु-मा-स्था' इतीत्वम्-पीत्वा खलु। अलं-खल्वोः किम्-मा कार्षीत्। प्रतिषेधयोः किम्-अलङ्कारः।

अर्थ—प्रतिषेधार्थक अलं और खलु शब्द उपपद रहते धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय हो प्राचीन आचार्यों के मतों से।

व्याख्या—'क्त्वा' का ककार इत्संज्ञक है। 'त्वा' शेष रहता है। कित् होने से गुण एवं वृद्धि का निषेध तथा संप्रसारण आदि कार्य होंगे। सेट् धातुओं से पर क्त्वा को वलादि आर्धधातुक होने से 'इट्' आगम भी होगा।

प्राचामिति—'प्राचाम्' से पूर्व आचार्यों के मतों के प्रति आदर व्यक्त किया गया है।

अमैवेति—'अव्यय के साथ यदि उपपद का समास हो तो अम् के साथ ही हो। इस नियम के कारण उपपद समास नहीं होता।

रूप सिद्धि—

अलं दत्वा—(मत दो)।

यहाँ प्रतिषेधार्थक 'अलम्' उपपद से 'दा' धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय हुआ।

= अलं + दा + क्त्वा

= अलं + दा + त्वा

'दो दद्धोः' सूत्र से 'दद्' होकर = अलं + दद् + त्वा

'खरि च' से चर्त्व' त् होकर = अलं + दत् + त्वा

= अलं दत्वा रूप सिद्ध हुआ।

पीत्वा खलु—(मत पीयो)।

'खलु' उपपद रहते 'पा' धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय होकर = पा + क्त्वा

= पा + त्वा

कित् प्रत्यय के परे होने से 'घुमा स्थागापाजहातिसां हलि' सूत्र से अ को ई होकर

= प। + त्व।

= पीत्वा रूप सिद्ध होता है।

अलं खल्वोरितिः—प्रतिषेधार्थक अलं और खलु शब्दों के उपपद रहते 'क्त्वा' प्रत्यय होता है। अन्य प्रतिषेधात्मक 'मा' आदि के योग में नहीं। ऐसा इसलिए कहा गया कि 'मा कार्षीत् (मत कीजिए) में 'मा' उपपद के बाद धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय नहीं है।

प्रतिषेधयोरिति—उपर्युक्त सूत्र के द्वारा यह भी स्पष्ट किया गया कि प्रतिषेधार्थक 'अलं' के ही योग में 'क्त्वा' का विधान होता है। जैसे अलङ्कारः में अलं पद तो है पर निषेधार्थक नहीं है। यहाँ भूषण अर्थ में है। अतः 'क्त्वा' नहीं हुआ है।

समान-कर्तृकयोः पूर्वकाले ३।४।२१।।

समान-कर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद् धातोः क्त्वा स्यात्। भुक्त्वा व्रजति। द्वित्वम् अतन्त्रम्-भुक्त्वा पीत्वा व्रजति।

अर्थ—समानकर्तृक धात्वर्थों में पूर्व काल में वर्तमान धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय हो अर्थात् जब एक साथ दो क्रियाए हो रही हों और उनका कर्ता एक हो तब जो क्रिया पहले हो उससे क्त्वा प्रत्यय हो।

पूर्व काल में होने से 'क्त्वा' से बने क्रिया पद को पूर्वकालिक क्रिया कहते हैं। इसके लिए करके या कर पद (हिन्दी में) जोड़ा जाता है। जैसे—जाकर, खाकर आदि।

रूप सिद्धि—

भुक्त्वा व्रजति—(खाकर जाता है।)

यहाँ भोजन तथा जाने की क्रियाओं का कर्ता एक है। भोजन क्रिया पहले हो रही है। इसलिए भोजन क्रियार्थक 'भुज्' धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय हुआ। धातु के जकार को (कवर्ग) गकार और उसे चर् ककार हो कर भुक् + क्त्वा (त्वा) = भुक्त्वा रूप सिद्ध होता है।

द्वित्वमिति—सूत्र में द्विवचन विवक्षित नहीं है अर्थात् पूर्व काल की चाहे कितनी ही क्रियाएँ हों उन सबसे 'क्त्वा' प्रत्यय होगा। जैसे—भुक्त्वा पीत्वा ब्रजति।

रूप सिद्धि—

भुक्त्वा, पीत्वा ब्रजति—(खा, पी कर जाता है।)

यहाँ खाना, पीना और जाना—तीन क्रियाएँ हैं। इसमें खाना तथा पीना क्रियाएँ पहले हो रही हैं। इसलिए खाना क्रियार्थक भुज् धातु और पीना क्रियार्थक 'पा' धातु से क्त्वा प्रत्यय हुआ। 'पा' धातु से क्त्वा (त्वा) होकर पा के आ को ई होकर 'पीत्वा' रूप सिद्ध होता है। भुक्त्वा पहले ही सिद्ध किया जा चुका है।

न क्त्वा सेट् १।२।१८।।

सेट् क्त्वा कित् न स्यात्। शयित्वा। सेट् किम्-कृत्वा।

अर्थ—सेट् 'इट्' सहित क्त्वा कित् न हो।

व्याख्या—'क्त्वा' प्रत्यय सदैव 'कित्' होता है किन्तु जिन धातुओं से परे 'क्त्वा' को 'इट्' का आगम हो वहाँ 'क्त्वा' प्रत्यय कित् नहीं होता अर्थात् गुण वृद्धि निषेध आदि कार्य नहीं होंगे। जैसे—शयित्वा।

रूप सिद्धि—

शयित्वा—(सोकर)।

'शीङ्' धातु से 'समान कर्तृकयोः पूर्वकाले' से क्त्वा प्रत्यय होकर

= शी + क्त्वा

= शी + त्वा

इट् का आगम होकर = शी + इ + त्वा

'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से ई को गुण 'ए' होकर = शे + इ + त्वा

'एचोऽयवायावः' से अयादेश' होकर = शय् + इ + त्वा

= शयित्वा रूप सिद्ध होता है।

रलो व्युपधादहलादेः संश्च १।२।२६।।

इवर्णोवर्णोपधाद् हलादे रलन्तात् परौ क्त्वा-सनौ सेटौ वा कितौ स्तः। द्युतित्वा, द्योतित्वा। लिखित्वा, लेखित्वा। व्युपधात् किम् ? वर्तित्वा। रलः किम्-सेवित्वा। हलाऽऽदेः किम्-एषित्वा। सेट् किम्-भुक्त्वा।

अर्थ—इवर्ण और उ वर्ण जिनकी उपधा में हों ऐसे हलादि और रलन्त धातुओं से परे सेट् क्त्वा तथा सन् प्रत्यय विकल्प से कित् होते हैं।

कित् पक्ष में गुण आदि का निषेध तथा संप्रसारण होता है और अभाव में गुण आदि होते हैं, संप्रसारण नहीं होता।

रूप सिद्धि—

द्युतित्वा, द्योतित्वा—(चमक कर)।

'द्युत्' धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय होकर = द्युत् + क्त्वा
= द्युत् + त्वा

'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' से इट् (इ) का आगम होकर = द्युत् + इ + त्वा

'द्युत्' धातु की उपधा में उ, आदि में द् हल वर्ण अन्त में त् है।

अतः 'रलो.....संश्च' सूत्र से 'क्त्वा' के विकल्प से कित् हो जाने पर गुण का निषेध होकर = द्युत् + इ + त्वा = द्युतित्वा रूप सिद्ध होता है।

कित् के अभाव पक्ष में उ को गुण 'ओ' होकर = द्योत् + इ + त्वा = द्योतित्वा रूप सिद्ध होता है।

लिखितत्वा, लेखित्वा—(लिख कर)।

इसी प्रकार 'लिख्' धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय, इट् का आगम, विकल्प से कित् होने पर गुण का निषेध होकर 'लिखित्वा' रूप सिद्ध होता है तथा कित् के अभाव में इ गुण होकर लेखित्वा अव्यय सिद्ध होता है।

व्युपधादिति—उपधा में इ वर्ण या उ वर्ण हो—ऐसा क्यों कहा ?

इसका उदाहरण है 'वर्तित्वा'—में कित् न होना। यहाँ वृत् धातु है इसकी उपधा में 'ऋ' है इसलिए गुण होकर एक ही रूप बना।

रलः इति—रलन्त हो ऐसा कहा क्योंकि 'एषि में सूत्र न लगे। यहाँ सेव् धातु है, अन्त में वकार है। यह रल् प्रत्याहार में नहीं आता।

हलादेरिति—हलादि धातु हो, ऐसा इसलिए कहा कि एषित्वा में सूत्र नहीं लगता। यह अजादि है, हलादि नहीं। इसलिए कित् न होने से गुण हो गया।

सेट् इति--'क्त्वा' सेट हो इसलिए कि अनिट् क्त्वा में यह सूत्र न लगे जैसे 'भुक्त्वा'। यहाँ क्त्वा अनिट् है। यहाँ विकल्प न होने से एक ही रूप बनता है।

उदितो वा ७।२।५६।।

उदितः परस्य क्त्वा इड् वा। शमित्वा, शान्त्वा। देवित्वा, द्युत्वा। दधातेर्हिः-हित्वा।

अर्थ—उदित् धातुओं से परे 'क्त्वा' के इट् का आगम हो विकल्प से।

शमित्वा, शान्त्वा—(शान्त होकर)।

उदित् 'शम्' धातु से 'क्त्वा प्रत्यय होकर = शम् + क्त्वा
= शम् + त्वा

'उदितो वा' सूत्र से इट् का आगम होकर = शम् + इ + त्वा
= शमित्वा रूप सिद्ध होता है।

'इट्' के अभाव पक्ष में (विकल्प से) 'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति' सूत्र से उपधा अकार को दीर्घ होकर = शाम् + त्वा

मकार को 'नश्चापदान्तस्य झलि' से अनुस्वार एवं पर सवर्ण होकर = शान्त्वा रूप सिद्ध होता है।

देवित्वा, द्यूत्वा—(खेल कर)।

'उदित्' 'दिव्' धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय होकर = दिव् + क्त्वा
= दिव् + त्वा

'उदितो व 'सूत्र से 'इट्' आगम होकर = दिव् + इ + त्वा

'दिव्' के 'इ' को गुण 'ए' हो कर = देव् + इ + त्वा
= देवित्वा रूप सिद्ध होता है।

विकल्प से इट् के अभाव में 'च्छ्वोः शूडननुनासिकेच'
से 'व्' को ऊठादेश होकर = दिव् + त्वा
= दि उ + त्वा

'इकोयणचि' से 'इ' को यण् होकर = द् य उ + त्वा = द्युत्वा
= द्यूत्वा रूप सिद्ध होता है।

हित्वा—(धारण कर)।

'धा' धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय होने पर 'दधातेर्हि' से धा को हि आदेश होकर 'हित्वा' रूप सिद्ध होता है।

जहातेश्च क्तिव ७।४।४३।।

हित्वा। हाङस्तु-हात्वा।

अर्थ—ओहाङ् (त्यागे) धातु को भी 'हि' आदेश होता है 'क्त्वा' प्रत्यय परे रहते।

रूप सिद्धि—

हित्वा—(त्याग कर)।

'हा' धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय होकर = हा + क्त्वा
= हा + त्वा

'जहातेश्च क्त्वि' सूत्र से हा को हि आदेश होकर = हि + त्वा = हित्वा रूप सिद्ध होता है।

हात्वा—(जाकर)।

'ओहाङ्' (गतौ-जाना अर्थ में) धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय होकर = हा + क्त्वा
= हा + त्वा
= हात्वा रूप सिद्ध होता है।

समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ७।१।३७।।

अव्यय–पूर्व पदेऽनञ् समासे क्त्वो 'ल्यप्' आदेशः स्यात्। तुक्–प्रकृत्य अनञ् किम्–अकृत्वा।

अर्थ–अव्यय पूर्व पद वाले समास में धातु से परे क्त्वा को ल्यप् आदेश होता है किन्तु नञ् समास में नहीं है। 'ल्यप्' का 'य' शेष रहता है। लकार एवं पकार की इत्संज्ञा हो जाती है।

रूप सिद्धि–

प्रकृत्य–(करके)।

यहाँ 'प्र' उपसर्ग सहित कृत्वा से 'कुगतिप्रादयः' सूत्र से समास होकर 'समासेऽनञ्.....ल्यप्' से 'क्त्वा' के स्थान पर 'ल्यप्' होकर = प्र कृ + ल्यप्
= प्र कृ + य

'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' सूत्र से तुक् (त्) का आगम होकर = प्र कृ + त् + य
= प्रकृत्य शब्द सिद्ध होता है।

अनञ् इतिः–नञ्–समास न हो, ऐसा क्यों कहा ? इसलिए कि नञ् समास में 'क्त्वा' को ल्यप् आदेश न हो जाय। जैसे अकृत्वा (न करके)। यहाँ 'नञ्' समास होने से क्त्वा को ल्यप् आदेश नहीं हुआ है।

आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ३।४।२२।।

आभीक्ष्ण्ये द्योत्ये पूर्वविषये णमुल् स्यात् क्त्वा च।

अर्थ–जहाँ आभीक्ष्ण्य (निरन्तरता) बतानी हो वहाँ क्त्वा के विषय में णमुल् प्रत्यय भी होता है और क्त्वा भी। 'णमुल्' का 'अम्' शेष रहता है। इससे बने शब्द अव्यय होते हैं।

नित्य-वीप्सयोः ८।१।४।।

आभीक्ष्ण्ये वीप्सायां च द्योत्ये पदस्थ द्वित्वं स्यात्। आभीक्ष्ण्यं तिङन्तेष्वव्यय संज्ञकेषु कृदन्तेषुच। स्मारं स्मारं नमति शिवम्। स्मृत्वा स्मृत्वा। पायं पायम्। भोजं भोजम्। श्रावं श्रावम्।

अर्थ–नित्यता अर्थात् निरन्तरता और वीप्सा (बार–बार होना) ये बातें जब क्रिया से प्रकट करनी हों तो पद को द्वित्व कर देते हैं। निरन्तरता तिङन्तों या अव्यय संज्ञक कृदन्तों की क्रिया की निरन्तरता को बताया जाता है।

रूप सिद्धि–

स्मारं स्मारं नमति शिवम्–(याद कर के शिव को प्रणाम करता है।)

यहाँ स्मरण क्रिया की निरन्तरता के लिए 'स्मृ' धातु से 'णमुल्' प्रत्यय हुआ। णित् होने से णमुल् परे रहते 'अचोञ्णिति' से ऋ को आर् वृद्धि हुई। स्मृ + णमुल् (अम्) = स्मार् + अम् = स्मारम् एवं 'नित्यवीप्सयोः' सूत्र से द्वित्व होकर 'स्मारम् स्मारम्' रूप सिद्ध होता है। पक्ष में 'क्त्वा' प्रत्यय होकर स्मृ + क्त्वा = स्मृ + त्वा = स्मृत्वा एवं द्वित्व होकर स्मृत्वा स्मृत्वा रूप सिद्ध होता है।

पायं पायम्–(बार बार पीकर या रक्षा करके)।

'पा' धातु से 'अभीक्ष्ण्ये णमुल च' सूत्र से 'णमुल्' होकर = पा + णमुल्
= पा + अम्

'णित् कृत् प्रत्यय 'ण्मुल्' के परे होने से युक् (य्) का आगम हो = पा + य् + अम् = पायम्

'नित्य वीप्सयोः' से द्वित्व होकर = पायं पायम् रूप सिद्ध होता है। तथा पक्ष में 'क्त्वा' प्रत्यय होकर पा + त्वा, आ को ई होकर पीत्वा तथा द्वित्व होकर पीत्वा-पीत्वा रूप बनते हैं।

भोजं भोजम्—(निरन्तर खाकर)।

यहाँ 'भुज्' धातु से निरन्तरता व्यक्त करने के अर्थ में ण्मुल् (अम्) प्रत्यय हुआ। फिर लघूपध गुण होने पर भोजम् शब्द बना तथा द्वित्व होने पर 'भोजं भोजम्' रूप सिद्ध हुआ।

श्रावं श्रावम्—(सुन सुन कर)।

यहाँ सुनना क्रिया की निरन्तरता प्रकट करने के लिए 'श्रु' धातु से 'ण्मुल्' (अम्) प्रत्यय हुआ। श्रु + ण्मुल् (अम्) = श्रु + अम्। णित् परे होने पर धातु के उकार को वृद्धि औकार होकर फिर उसे 'आव्' आदेश होने पर = श्राव् + अम् = श्रावम् रूप बना। द्वित्व होने पर 'श्रावं श्रावम्' रूप सिद्ध हुआ। पक्ष में 'क्त्वा' प्रत्यय भी होता है।

अन्यथैवं-कथम्-इत्थंसु सिद्धाऽप्रयोगश्चेत् ३।४।२७।।

एषु कृञो णमुल्स्यात् सिद्धोऽप्रयोगोऽस्य एवं भूतश्चेत् कृञ्, व्यर्थत्वात्प्रयोगाऽनर्ह इत्यर्थः। अन्यथाकारम, एवं कारम्, इत्थं कारं भुङ्क्ते। सिद्धेति किम् शिरोऽन्यथा कृत्वा।

अर्थ—अन्यथा, एवम्, कथम् और इत्थम् इन अव्ययों के पूर्व रहते 'कृञ्' धातु से 'ण्मुल्' प्रत्यय हो और 'कृञ्' का उपयोग सिद्ध हो जाय अर्थात् कृञ् के (प्रयोग) न करने पर भी इष्ट अर्थ की प्रतीति हो जाय। 'सिद्ध प्रयोग' का अर्थ है कि व्यर्थ होने के कारण 'कृञ्' का प्रयोग उचित नहीं होता।

रूप सिद्धि—

अन्यथाकारम् एवं कारम् इत्थंकारं भुङ्क्तेः—(और प्रकार से खाता है या इस प्रकार खाता है।)

यहाँ अन्यथा, एवं और इत्थम् पूर्वक 'कृ' धातु से 'ण्मुल्' प्रत्यय प्राप्त हुआ। 'अचोञ्णिति' से वृद्धि के रूप बनते हैं। यहाँ 'कृ' का प्रयोग व्यर्थ है क्योंकि इष्ट अर्थ अन्यथा आदि उपपदों से स्पष्ट हो जाता है। अर्थात् अन्यथा, एवम् 'इत्थम्' भुङ्क्ते ऐसा कहने पर भी अभीष्ट अर्थ की प्रतीति हो जाती है। इसलिए 'कृञ्' के सिद्धाप्रयोग होने से 'ण्मुल्' प्रत्यय हुआ।

सिद्धेतीतिः—सिद्धाप्रयोग ऐसा क्यों कहा ? इसलिए कि 'शिरोऽन्यथा कृत्वा भुङ्क्ते' (शिर को अन्यथा करके खाता है।) यहाँ 'ण्मुल्' नहीं है क्योंकि 'कृ' का प्रयोग व्यर्थ नहीं है अपितु आवश्यक है। नहीं तो 'अन्यथा' का प्रयोग व्यर्थ हो जाएगा तथा शिरः इस कर्म का अन्वय कठिन हो जाएगा।

।।इत्युत्तरकृदन्तप्रकरणम्।।

।।कृदन्त प्रकरण समाप्त।।

परिशिष्ट : बहुविकल्पीय (वस्तुनिष्ठ)

१. कृतिः में प्रकृति एवं प्रत्यय हैं—

(क) कृ + क्तिन्, (ख) कृ + ल्युट्,

(ग) कृ + क्त, (घ) कृ + शानच्।

२. नी धातु से क्त प्रत्यय के योग करने पर बनेगा—

(क) नीत्वा, (ख) नीति,

(ग) नीतः, (घ) आनीय।

३. कृ धातु में 'तव्यत्' प्रत्यय का योग करने पर बनेगा—

(क) कर्तव्यम्, (ख) कृतव्यम्,

(ग) करणीय, (घ) कृतम्।

४. पठन् में प्रकृति एवं प्रत्यय है—

(क) पठ् + क्तिन्, (ख) पठ् + शतृ,

(ग) पठ् + क्त, (घ) पठ् + ल्यप्।

५. 'दृश्' में तुमुन् प्रत्यय के योग से रूप बनता है—

(क) पश्चन्, (ख) दृष्ट्वा,

(ग) दृष्टुम्, (घ) दृक्ष्यति।

६. नेयः का प्रकृति प्रत्यय है—

(क) नी + यत्, (ख) नी + ल्यप्,

(ग) नी + शानच्, (घ) नी + अनीयर्।

७. 'भोक्तुम्' में प्रकृति प्रत्यय है—

(क) भोग + तुमुन्, (ख) भुज् + तुमुन्,

(ग) भुक् + तुमुन्, (घ) भोज : तुमुन्।

८. ग्रह् धातु से क्त्वा प्रत्यय से बनता है—

(क) ग्रहीत्वा, (ख) गृहीत्वा

(ग) गहीत्वा, (घ) ग्राहीत्वा।

९. 'नयनम्' में प्रकृति प्रत्यय हैं—

(क) नी + ल्युट्, (ख) नय + ल्युट्,

(ग) नयन + ल्युट् (घ) ने ल्यूट्।

१०. 'प्रच्छ' धातु में क्त्वा प्रत्यय से बनता है—

(क) प्रष्ट्वा, (ख) पृष्ट्वा,

(ग) प्रक्ष्वा, (घ) प्रिछ्वा।

११. कुरुषु चरति—

(क) कुरुचरः, (ख) कुरुचरति,

(ग) कुच्चरति, (घ) चरति।

१२. दातुम् योग्यमिति—

(क) देयम्, (ख) देयः, (ग) देयात्, (घ) ददाति।

उत्तर

१. (क) २. (ग) ३. (क) ४. (ख) ५. (ग) ६. (क) ७. (ख) ८. (क) ९. (क) १०. (ख) ११. (क) १२. (क)।

लघु उत्तरीय

१. पाणिनि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

२. संस्कृत वैयाकरणों पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

३. महर्षि पतञ्जलि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

४. लघुसिद्धान्तकौमुदी के रचनाकार के बारे में संक्षेप में लिखिए।

५. माहेश्वर सूत्रों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

६. प्रत्याहार किसे कहते हैं। इनकी संख्या एवं बनने की प्रक्रिया समझाइए।

७. व्याकरण में निहित निम्नलिखित पारिभाषिक शब्दों को स्पष्ट कीजिए—

(क) आदेश, (ख) आगम, (ग) सम्प्रसारण, (घ) एकादेश।

८. व्याकरण में निहित निम्नलिखित शब्दों की परिभाषा बताइए—

(क) इत्संज्ञा, (ख) पद, (ग) उपधा, (घ) गुण, (ङ) वृद्धि।

९. प्रातिपदिक का क्या तात्पर्य है ? प्रातिपदिकों के साथ स्वादि कार्य कैसे होता है ?

१०. प्रत्यय किसे कहते हैं ? कृदन्त एवं तद्धित प्रत्ययों को स्पष्ट कीजिए।

११. निम्नलिखित कृदन्त प्रत्ययों के सूत्रों का उदाहरण सहित विवरण दीजिए—

(क) ण्वुलतृचौ, (ख) तव्यत्तव्यानीयरः, (ग) अचो यत्,

(घ) पोरदुपधात्, (ङ) ऋहलोर्ण्यत्, (च) युवोरनाकौ।

१२. निम्नलिखित कृदन्त प्रत्ययों से निर्मित शब्दों की रूप सिद्धि कीजिए—

(क) कुम्भकारः, (ख) प्रियः, (ग) लवणः,

(घ) मन्त्री, (ङ) कारकः, (च) जनार्दनः।

१३. निम्नलिखित कृदन्त प्रत्ययों से निर्मित शब्दों की रूप सिद्धि कीजिए—

(क) कुरुचरः, (ख) जनमेजयः, (ग) प्रियंवदः,

(घ) सोमयाजी, (ङ) सरसिजम्, (च) शीर्णः।

१४. निम्नलिखित कृदन्त प्रत्ययों के सूत्रों का उल्लेख करते हुए रूप सिद्धि कीजिए–
(क) शुष्कः, (ख) चक्राणः, (ग) विद्वान्,
(घ) चिकीर्षु, (ङ) नेत्रम्, (च) पवित्रम्।

१५. निम्नलिखित सूत्रों की सोदाहरण व्याख्या कीजिए–
(क) तुमुनण्वुलौ क्रियार्थायाम्,
(ख) घञि च भाव करणयोः,
(ग) ऋदोरप्,
(घ) स्त्रियां क्तिन्,
(ङ) सम्पदादिभ्यः क्विप्।

१६. प्रत्यय सूत्रों का उल्लेख करते हुए निम्नांकित शब्द रूपों को सिद्ध कीजिए–
(क) चिकीर्षा, (ख) हसनम्, (ग) दन्तच्छदः,
(घ) दुष्करः, (ङ) पीत्वा, (च) भोजं भोजम्।

नोटः—उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर हेतु मूल भाग देखें।

दीर्घ उत्तरीय

१. धातु का क्या तात्पर्य है ? सार्वधातुक एवं आर्धधातुक को स्पष्ट करें।
२. लकार क्या हैं ? लकारों का वर्णन करें।
३. विधिलिङ्ग 'चाहिए' अर्थ को बोधित करने वाले प्रत्यय कौन–से हैं, सोदाहरण समझाइए।
४. वर्तमान कालिक कृदन्त प्रत्ययों का विवरण देते हुए उनके पाँच उदाहरणों का वाक्यों में प्रयोग कीजिए।
५. भूत कालिक प्रत्ययों का विवरण देते हुए उनके पाँच उदाहरणों का वाक्यों में प्रयोग कीजिए।

नोटः—उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर हेतु मूल भाग देखें।

✤